कर्मकाण्डचन्द्रिका

"उत्तिष्ठतावपश्यतेन्द्रस्य भागमृत्वियम्"

ऋग० १० । १८० । ३

अर्थ

उठो, सन्ध्याकाल में ईश्वर का ध्यान और
ऋतु २ में उसकी महिमा का गान करो।

पं० देवदत्तशर्मा

कर्मकाण्डचन्द्रिका

वैदिककर्मकाण्ड के प्रचारार्थ

श्रीमान् पण्डित [illegible]दत्तशर्मा

कर्णवास - ज़िला - बुलन्दशहर निवासी

ने

श्रीमान् सेठ जयनारायण रामचन्द्र

पोद्दार की सहायता द्वारा निर्माण करके

प्रकाशित किया

बी. एल. पावगी द्वारा हितचिन्तक प्रेस, रामघाट-
काशी में मुद्रित।

सं० १९८२ सन् १९२५ ई०

तृतीय संस्करण] [मूल्य ॥ आना

प्रस्तावना

प्राचीन समय में वेद और आर्य्यजाति का ऐसा सम्बन्ध था जैसा जीव तथा शरीर का है, वेद इस जाति का आत्मा और यह उसके कर्मकाण्ड का साधनभूत शरीर और शरीर शरीरीभाव से दोनों में एकात्मता थी ॥

"विजानीह्यार्य्यान्ये च दस्यवः" ऋग्० १।५१।८ इस वेदवाक्य के अनुसार वैदिक लोग ही आर्य्य कहलाते थे, इनसे भिन्न दस्यु=अनार्य्य थे, इसी आशय से गीता में कृष्णजी ने कहा है कि "अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन"= हे अर्जुन! तू अनार्य्यता को छोड़, यह अनार्य्यता नरकपात का हेतु और अकीर्ति के देने वाली है, अस्तु—

इस अनार्य्यता रूपी नरक से निकालने का सौभाग्य महर्षि स्वामी "दयानन्दसरस्वतीजी" को ही प्राप्त है जिन्होंने ऐसे विकट समय में भारतीय सन्तान के निर्जीव शरीर में फिर वेदरूप जीवात्मा का सञ्चार और भूमण्डल में वेद भगवान् का प्रचार किया, उक्त वेदप्रचार के लिये मनु भगवान् ने यह लिखा है कि:—

> योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् ।
> सजीवन्नेव शूद्रत्वमाशुगच्छति सान्वयः ॥
>
> मनु० २।१६८

अर्थ—जो वेद को न पढ़कर अन्यत्र श्रम करता है वह अपने जीवन में ही पुत्र पौत्र सहित शूद्रभाव को शीघ्र ही प्राप्त होजाता है "शुचाद्रवतीति-शूद्रः"=जो शोक से डरकर भागे अर्थात् भयभीत रहे उसका नाम "शूद्र" है, वास्तव में जब से आर्यजाति ने वेद के अध्ययन को छोड़ दिया तभी से उसमें शूद्रत्व का भाव आगया, आजकल जितनी पद्धतियें पाई जाती हैं वह प्रायः वेदों से भिन्न ग्रन्थों का आश्रय करती हैं और प्राचीन समय में मनु आदि धर्मशास्त्र केवल एकमात्र वेद को अवलम्बन करते थे, जैसाकि मनुजी एक स्थल में लिखते हैं कि:—

> या वेदबाह्या स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः ।
> सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमो निष्ठा हि ताः स्मृताः ॥
>
> मनु० १२।९५

अर्थ—जो वेद से बाह्य अर्थात् वेदविरुद्ध स्मृति अथवा अन्य ग्रन्थ हैं वे सब निष्फल, असत्य = अन्धकाररूप इस लोक और परलोक में दुःखदायक हैं, ऐसे ग्रन्थ सदा अप्रमाण माने जाते थे परन्तु आज वह समय आगया कि जो लोग बड़े बड़े कर्मकाण्डी कहलाते हैं वे जब अपनी श्रद्धा भक्ति से उपासना और पूजा पाठ करते हैं तो उनमें स्यात् ही कोई मन्त्र वेद का आता हो, इसी कारण नित्य प्रातःपठनीय पुरुषसूक्त तथा विष्णुसूक्तादि सूक्तों का भी लोग अर्थ नहीं जानते, यदि कोई वेद का श्रद्धालु वेद के पुरुषसूक्तादि सूक्तों का प्रातःकाल उठकर पाठ भी करता है तो वह उनके अर्थ नहीं जानता. इसलिये इस बात की अत्यन्त आवश्यकता है कि नित्यकर्म में आने वाले वेद के सूक्तों का कोई सरल हिन्दी मे सुन्दर भाष्य हो, जिसको पढ़कर सर्वसाधारण लाभ उठावें ॥

यद्यपि आह्निकचन्द्रिका, गायत्रीव्याख्या तथा संस्कारचन्द्रिका आदि ग्रन्थों में कई एक सूक्तों के भाष्य संस्कृत तथा भाषा में पाये जाते हैं तथापि इन में उनका विनियोग यथाव स्थित नहीं, संस्कारचन्द्रिका में विनियोग ठीक है परन्तु उपासना योग्य सूक्तों तथा कर्मकाण्डोपयोगी सूक्तों का विस्तृत भाष्य नहीं. इसलिये इस ग्रन्थ मे हमने स्तुतिप्रार्थनोपासना, स्वस्तिवाचन, शान्तिप्रकरण, पुरुषसूक्त, विष्णुसूक्त और नित्यकर्तव्य पांचो यज्ञों की विधि सहित भाषा कराके सर्वसाधारण के हितार्थ ऐसा सुगम करदिया है कि प्रत्येक वेदधर्मानुयायी इसको पढ़कर लाभ उठा सकता है, विशेष कर मारवाड़ी भाइयों से हमारी प्रार्थना है कि वे अपने नित्य कर्मों मे वेदमन्त्रों का पाठ अवश्य किया करें, क्योंकि यह बात स्पष्ट है कि वेदपाठ से अपूर्व पुण्यों की प्राप्ति होती और इससे अविद्यारूपी पङ्क कलङ्क निवृत्त होता है ॥

आजकल जब हम वेदानुयायी हिन्दूमात्र के आचार व्यवहार पर दृष्टि डालते है तो उनमे वेद का पठन-पाठन बहुत ही न्यून पाते हैं. बहुत क्या यहां तक वेद की न्यूनता पाई जाती है कि बहुत से हिन्दू प्रातःकाल उठकर एक वेद मन्त्र का भी पाठ नहीं करते, और न सन्ध्या अग्निहोत्रादि नित्यकर्तव्य कर्मों का अनुष्ठान करते हैं जिनका न करना पाप और करने में सर्वत्र पुण्य विधान किया है, जिसकी विधि आगे ब्रह्मयज्ञ के साथ विस्तारपूर्वक लिखी है और वहीं यह भी भलेप्रकार दर्शाया है कि मनुष्य प्रातःकाल ब्रह्ममुहूर्त्त में जागे और उस समय उठकर अपने धर्म का चिन्तन करे, तदनन्तर इस शरीर को पीड़ा देने वाले अविद्यादि पांच क्लेशों का चिन्तन करे तथा उन क्लेशों का मूल जो पूर्वजन्मकृत अशुभ कर्म हैं उनका भी अनुसन्धान करे और वेद का तत्व जो एकमात्र ईश्वर है उसकी उपासना करता हुआ वेद का सार जो "ओ३म्" है उसका ध्यान करे, वेद में "प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे" और "सायं सायं नो गृहपति" इत्यादि अनेक मंत्र पाये जाते

हैं जिनमें प्रातः और सायंकाल की सन्ध्या का भलेप्रकार विधान किया है, अस्तु–हमारा मुख्य प्रयोजन ईश्वर को वर्णन करने वाले मूक्तों की ओर दृष्टि दिलाना है, इसी अभिप्राय से हमने इस ग्रन्थ में प्रातः सायं पठनीय वेदसूक्तों तथा नित्यकर्तव्य कर्मों का संग्रह करा के प्रकाशित किया है ॥

आजकल आर्य्यजाति का प्रवाह प्रायः काव्य, नाटक, कथा, कहानी, अलंकार, शृंगार तथा उपन्यास ग्रन्थों की ओर बह रहा है, इसलिये हमने इस प्रवाह से चित्तवृत्ति हटाकर पुरुषों को भगवत्परायण बनाने के लिये इस कर्मकाण्डप्रधान ग्रन्थ का संग्रह कराया है ॥

इसमें केवल उपासना और ईश्वर का ध्यान ही नहीं किन्तु पुरुष को उद्योगी और कर्मयोगी बनाने के लिये वेद के उत्तमोत्तम उपदेशरत्नों का संग्रह भी कराया है, जैसाकि "मोषु वरुण मृन्मयं गृहं राजन्नहं गमम्। मृला सुक्षत्र मृलय" ऋग्० ७।८९।१ इस मन्त्र में परमात्मा से यह प्रार्थना कीगई है कि हे सर्वव्यापक परमात्मन्! आप हमें मिट्टी के घर मत दें किन्तु हमको ऐश्वर्य्य वाले घर दें ताकि हम ऐश्वर्य्यसम्पन्न होकर आपके ऐश्वर्य्य को प्राप्त हों ॥

इस मन्त्र का आशय यह है कि दरिद्र पुरुष उस परमात्मा के परमै-श्वर्य्य को प्राप्त नहीं होते वे अपने दारिद्र्य से आलसी बनकर प्रतिदिन परमात्मै-श्वर्य्य से विमुख रहते हैं, इसलिये परमात्मा से परम ऐश्वर्य्य की प्रार्थना अवश्य करनी चाहिये, इसी अभिप्राय से दारिद्र्य की निन्दा करते हुए महाभारत वनपर्व में युधिष्ठिर ने यह कथन किया है कि "मुझे राज्य से च्युत होने का इतना शोक नहीं जितना निर्धन होने के कारण मेरे घर से अर्थियों के निराश होकर लौट जाने का शोक है" अर्थात् जब ब्राह्मण साधु तथा संन्यासियों को मैं भोजन नहीं करासकता और नाही उनके विद्याविषयक मनोरथ पूर्ण करने में समर्थ हूं तो मेरे जीने का क्या फल ॥

इस स्थल में धर्मराज युधिष्ठिर ने दरिद्र की अत्यन्त निन्दा की है कि जो पुरुष दरिद्र है वह धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन मनुष्यजन्म के चारो फलों से वञ्चित रहता है, इसलिये मनुष्य को दरिद्र के दूर करने का उद्योग सदैव करना चाहिये और वह उद्योग वेदपाठ तथा वेद के स्वाध्याय के विना कदापि नहीं होसकता ॥

या यों कहो कि कर्मयोगी पुरुष के विना दरिद्रता की जड़ को कोई नहीं काट सकता और वह दरिद्रता की जड़ महामोह है अर्थात् मोह के वशीभूत होकर जो पुरुष अपने क्षुद्र ग्रामों में वा निर्जल प्रदेशों में पड़े रहते हैं वे कदापि उन्नति नहीं करसकते, इसलिये कर्मयोगी पुरुष को चाहिये कि सबसे पहिले ज्ञानरूपी खड्ग से मोहजालरूपी लता को छेदन करे अर्थात् इस लता की जड़ को ज्ञानरूपी शस्त्र से काटे, यहां ज्ञान और कर्मरूपी शस्त्र दोनों की

आवश्यकता है, इसीलिये हमने इस "कर्मकाण्डचन्द्रिका" में कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड दोनों का संग्रह कराया है, जिससे पुरुष ज्ञानयोगी और कर्मयोगी बनकर उद्योगी बनें ॥

अधिक क्या कृष्णजी गीता में कथन करते हैं कि "नायं लोकोऽस्त्य-यज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम" गी० ४ । ३१ = हे अर्जुन! जो पुरुष पंचयज्ञ नहीं करता और अमावस्या तथा पूर्णमासी को भी यज्ञ नहीं करता वह इस लोक के भी सुखों को नहीं भोग सकता परलोक की तो कथा ही क्या ॥

इसी अभिप्राय से आन्हिकचन्द्रिका, संस्कारचन्द्रिका तथा संस्कारविधि आदि वैदिक ग्रन्थों के आधार पर श्रीयुत "पं०देवदत्तशर्मा" ने हमारी प्रेरणा से इस ग्रन्थ को संग्रह किया और हमने वेदानुयायी मनुष्यमात्र के लिये इसको प्रकाशित कराया है, यह कोई साम्प्रदायिक ग्रन्थ नहीं किन्तु यह वैदिक ग्रन्थ है इसलिये प्रत्येक वैदिकधर्मी का इसके पठनपाठन में पूर्ण अधिकार है, अतएव हमारी प्रत्येक वैदिकधर्मी से विनय है कि रागद्वेष को छोड़कर इसका अध्ययन करें ॥

विशेषकर मारवाड़ी भाइयों से यह विनय है कि वह अपने नित्यकर्म के लिये इस पुस्तक को अपनी पाठ्य पुस्तक बनायें ॥

विनीत-

जयनारायण रामचन्द्र पोद्दार

कलकत्ता

॥ अथेश्वरस्तोत्रप्रार्थनोपासना ॥

माहं ब्रह्म निराकुर्यां मामा ब्रह्म-
निराकरोदनिराकरणमस्तु ॥

हे संसार के यात्री लोगो! उपरोक्त ऋषि वाक्य हम सबको उपदेश करता है कि परमात्मा ने मेरा त्याग नहीं किया मैं भी उनका परित्याग नहीं करूंगा अर्थात् परमपिता परमात्मा मेरा निरन्तर अन्न वस्त्रादि द्वारा पालन पोषण तथा रक्षण करते हैं मैं भी उनकी आज्ञा निरन्तर पालन करता हुआ संसार में यात्रा करूंगा ॥

इसलिये प्यारे भाइयो! आओ, हम सब मिलकर उस परमपिता परमात्मा के गुण कीर्त्तन करते हुए उनकी शरण में जायं और उनसे प्रार्थना करें कि हे प्राणनाथ प्रभो! तुम्हारी कैसी अद्भुत महिमा है, तुम्हारे अनन्त ऐश्वर्य्य को कौन जान सकता है, तुम्हारे शासन में असंख्यात ब्रह्माण्ड अपनी २ मर्यादा में चलकर तुम्हारी महिमा को महान् कर रहे हैं, और इस ब्रह्माण्ड में असंख्यात जीव जन्तु आपके आश्रित जीवन निर्वाह कर रहे हैं, तुम सबको अन्न और जल देते हो, क्षणभर भी किसी को नहीं भुलाते, तुम स्वयं अनन्त हो, तुम्हारा प्रेम अनन्त है, तुम्हारी दया अनन्त है, तुम्हारी महिमा अनन्त है, तुम सब के स्वामी और अन्तर्यामी हो ॥

हे सच्चिदानन्द अन्तर्यामिन् प्रभो! हम सब पतित दीन दुःखी तुम्हारे द्वार पर आये हैं, हमारे हृदयरूपी नेत्र खोलदो कि हम तुम्हारे प्रेममय स्वरूप को अवलोकन कर तृप्त हों, हे दयामय! हम अपने दुष्ट संकल्पों को संसार से

छिपाये रहते हैं परन्तु आपसे छिपे हुए नहीं हैं, तुम उन सब को देखते हुए भी हमारा त्याग नहीं करते, हमारे उन सब पापों को जानकर भी हमको अपनी शरण में लेते हो, धन्य हो, धन्य हो, धन्य हो प्रभो ! तुम्हारी दया अपरम्पार है ॥

हे दयामय ! हम अपने अज्ञान से पापी बनकर तुम्हारी शरण में आन पड़े हैं. तुम्हारे बिना कौन है जो हमको इस पाप पिशाच से बचाकर पुण्य का मार्ग दिखलावे, तुम्हारा नाम पतितपावन है. तुम गिरे हुओं का सहारा हो, तुम्हारी शरण लेकर पापी पुण्यात्मा बन जाता, निर्बल बलवान् हो जाता, और संतप्त हृदय शान्त होता है, इस आशा से हम अपना मलिन हृदय लेकर तुम्हारे द्वार पर आये हैं हमारा मलिन हृदय तुम्हारे सामने है, तुम शुद्धस्वरूप हो हमारे हृदय का मैल दूर करो और अपनी प्रकाशमयी ज्योति का प्रकाश करो कि हम जहां और जिस अवस्था में रहें तुम्हारे होकर रहें, तुम्हारी महिमा का विस्तार करें, तुम्हारा ही नाम उच्चारण करें, तुम्हारी आज्ञा का पालन करें, तुम्हीं को प्रणाम करें, तुम्हारी पूजा, भक्ति और तुम्हारा विश्वास तथा प्रेम हमारे जीवन का लक्ष्य हो, हम हाथ जोड़कर यही भिक्षा मांगते हैं यही दान दो, तुम्हारे यहां से कोई खाली हाथ नहीं फिरता, क्योंकि तुम्हारा भाण्डार अटूट है ॥

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव ।
यद्भद्रंतन्न आसुव ॥ यजु॰ ३०। ३

पदा॰—(सवितः) हे सकल जगत् के उत्पत्तिकर्त्ता, समग्र ऐश्वर्य युक्त (देव) शुद्धस्वरूप, सब सुखों के दाता परमेश्वर ! आप कृपाकरके (नः) हमारे (विश्वानि) सम्पूर्ण (दुरितानि) दुर्गुण, दुर्व्यसन तथा दुःखों को (परासुव) दूर कर दीजिये, और (यत्) जो (भद्रं) कल्याणकारक गुण, कर्म, स्वभाव तथा पदार्थ हैं (तत्) वह सब हमको (आसुव) प्राप्त कीजिये ॥

भावा॰—हे दिव्यशक्तिसम्पन्न परमेश्वर ! आप हमारे सम्पूर्ण पाप कर्मों को दूर करके पुण्य कर्मों में हमारा प्रवेश करें अर्थात् हमको पाप कर्मों से छुड़ाकर शुभकर्मों के करने की सामर्थ्य प्रदान कीजिये ॥

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥
यजु॰ १३। ४

पदा०—(हिरण्यगर्भः) जो प्रकाशस्वरूप और जिसने प्रकाश करने हारे सूर्य्य चन्द्रमादि पदार्थ उत्पन्न करके धारण किये हुए हैं, जो (भूतस्य) उत्पन्न हुए सम्पूर्ण जगत् का (जातः) प्रसिद्ध (पतिः) स्वामी (एकः) एक ही चेतन स्वरूप (आसीत्) था, जो (अग्रे) सब जगत् के उत्पन्न होने से पूर्व (समवर्तत) वर्तमान था (सः) सो (इमाम्) इस (पृथिवीं) पृथिवी (उत) और (द्यां) सूर्यादिकों को (दाधार) धारण कर रहा है, हम लोग उस (कस्मै) सुखस्वरूप (देवाय) शुद्ध परमात्मा के लिये (हविषा) ग्रहण करने योग्य योगाभ्यास और अति प्रेम से (विधेम) विशेष भक्ति किया करें ॥

भावा०—जो जगत्पिता परमात्मा सृष्टि से प्रथम एक था और जिसने इस सम्पूर्ण जगत् को अपनी सामर्थ्य से उत्पन्न करके धारण किया हुआ है वही परमात्मा हम सब को वेदविहित कर्मों द्वारा मन, वाणी से पूजनीय है ॥

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
यस्यच्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

यजु० २५ । १३

पदा०—(यः) जो (आत्मदाः) आत्मज्ञान का दाता (बलदाः) शरीर, आत्मा तथा समाज के बल का देने हारा (यस्य) जिसकी (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (उपासते) उपासना करते हैं और (यस्य) जिसका (प्रशिषं) प्रत्यक्ष सत्यस्वरूप शासन तथा न्याय अर्थात् शिक्षा को मानते हैं (यस्य) जिसका (छाया) आश्रय ही (अमृतं) मोक्ष=सुखदायक है (यस्य) जिसका न मानना अर्थात् भक्ति न करना ही (मृत्युः) मृत्यु आदि दुःख का हेतु है, हम लोग उस (कस्मै) सुखस्वरूप (देवाय) सकल ज्ञान के देने हारे परमात्मा की प्राप्ति के लिये (हविषा) आत्मा तथा अन्तःकरण से (विधेम) भक्ति अर्थात् उसी की आज्ञा पालन करने में तत्पर रहें ॥

भावा०—जो परमात्मा सबका जीवनदाता, बुद्धिबल, बाहुबल तथा धनबल, इन तीनों बलों का देने वाला, जिसकी आज्ञा में सब जड़ चेतन पदार्थ हैं और जिसके अधीन सबकी मुक्ति तथा मृत्यु है, वही परमात्मा हम सब को वेदविहित कर्मों द्वारा मन, वाणी से पूजनीय है ॥

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव ।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

यजु० २३ । ३

पदा०—(यः) जो (प्राणतः) प्राण वाले और (निमिषतः) अप्राणिरूप (जगतः) जगत् का (महित्वा) अपनी अनन्त महिमा से (एकः, इत्) एक ही (राजा) विराजमान राजा (बभूव) है (यः) जो (अस्य) इस (द्विपदः) मनुष्यादि और (चतुष्पदः) गौ आदि प्राणियों के शरीर की (ईशे) रचना करता है, हम उस (कस्मै) सुखस्वरूप (देवाय) सकल ऐश्वर्य्य के देने हारे परमात्मा के लिये (हविषा) अपनी सकल उत्तम सामग्री से (विधेम) विशेष भक्ति करें ॥

भावा०—इस मन्त्र का आशय यह है कि जो अपनी अनन्त महिमा से इस चराचर जगत् का एक ही स्वामी है और जिसने द्विपद्=मनुष्यादि प्राणी तथा चतुष्पद्=गौ आदि प्राणियों को उत्पन्न किया है वही सकल ऐश्वर्य्य-सम्पन्न परमात्मा हमारा पूजनीय इष्ट देव है ॥

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वः स्तभितं येन नाकः ।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

यजु० ३२ । ६

पदा०—(येन) जिस परमात्मा ने (उग्रा) तीक्ष्ण स्वभाव वाले (द्यौः) सूर्य्यादि (च) और (पृथिवी) भूमि को (दृढा) धारण (येन) जिस जगदीश्वर ने (स्वः) सुख को (स्तभितम्) धारण और (येन) जिस ईश्वर ने (नाकः) दुःखरहित मोक्ष को धारण किया है (यः) जो (अन्तरिक्ष) आकाश में (रजसः) सब लोकलोकान्तरों को (विमानः) विशेष मानयुक्त अर्थात् जैसे आकाश में पक्षी उड़ते हैं वैसे सब लोकों का निर्माण करता और भ्रमण कराता है, हम लोग उस (कस्मै) सुखदायक (देवाय) कामना करने योग्य परब्रह्म की प्राप्ति के लिये (हविषा) सब सामर्थ्य से (विधेम) विशेष भक्ति करें ॥

भावा०—जिस परमात्मा ने अपनी महत्ता से इस बड़े द्युलोक तथा पृथिवी लोक को धारण किया हुआ है, जो मोक्ष तथा सुख का स्वामी है और जो आकाश में अनेक लोकलोकान्तरों को निर्माण करके नियम में रखता है वही हमारा पूजनीय पिता उपासना करने योग्य है ॥

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वाजातानि परिता बभूव ।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥

ऋग्० १० । १२१ । १०

पदा०—(प्रजापते) हे सब प्रजा के स्वामी परमात्मा (त्वत्) आपसे (अन्यः) भिन्न दूसरा कोई (ता) उन (एतानि) इन (विश्वा) सब (जातानि) उत्पन्न हुए जड़चेतनादिकों को (न) नहीं (परि, बभूव) तिरस्कार करता अर्थात् आप सर्वोपरि हैं (यत्कामाः) जिस २ पदार्थ की कामना वाले हम लोग (ते) आपका (जुहुमः) आश्रय लेवें और वाञ्छा करें (तत्) उस २ की कामना (नः) हमारी सिद्ध (अस्तु) होवे, जिससे (वयं) हम लोग (रयीणाम्) धनैश्वर्य्यों के (पतयः) स्वामी (स्याम) होवें ॥

भावा०—हे प्रजापते ! आप ही इस जगत् के स्वामी हैं, आपके बिना अन्य कोई नहीं है, आप ऐसी कृपा करें कि हम सब आपके प्रजाजन आपकी आज्ञानुसार जिस २ फल की कामना से काम करते हैं वह २ हमारी कामनायें पूर्ण हों और हम स्वाधीन धनों के स्वामी बनें ॥

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥ यजु० ३२ । १०

पदा०—हे मनुष्यो ! (सः) वह परमात्मा (नः) अपने लोगों को (बन्धुः) भ्राता के समान सुखदायक (जनिता) सकल जगत् का उत्पादक (सः) वह (विधाता) सब कामों का पूर्ण करने हारा (विश्वा) सम्पूर्ण (भुवनानि) लोकमात्र और (धामानि) नाम, स्थान तथा जन्मों को (वेद) जानता है, और (यत्र) जिस (तृतीये) सांसारिक सुख दुःख से रहित नित्यानन्दयुक्त (धामन्) मोक्षस्वरूपधारण करने हारे परमात्मा में (अमृत) मोक्ष को (आनशानाः) प्राप्त होके (देवाः) विद्वान् लोग (अध्यैरयन्त) स्वेच्छापूर्वक विचरते हैं वही परमात्मा अपना गुरु, आचार्य्य, राजा और न्यायाधीश है, अपने लोग मिल के सदा उसकी भक्ति किया करें ॥

भावा०—हे मनुष्यो ! वह परमात्मा हमारा बन्धु, पिता, हमारे सब कामों को पूर्ण करने वाला, सम्पूर्ण लोक लोकान्तर तथा स्थानों को जानने वाला, वह दिव्य स्वरूप, नित्यानन्दयुक्त, विद्वानों को प्राप्त होने योग्य और जो सदा मोक्षस्वरूप है, वही हमारा गुरु, आचार्य्य, राजा तथा न्यायाधीश है, हम सबको उसी की उपासना करनी योग्य है ॥

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम ॥

यजु० ४० । १६

पदा०—(अग्ने) हे स्वप्रकाश ज्ञानस्वरूप, सब जगत् के प्रकाश करने हारे (देव) सकल सुखदाता परमेश्वर! आप जिससे (विद्वान्) सम्पूर्ण विद्यायुक्त हैं, कृपाकरके (अस्मान्) हम लोगों को (राये) विज्ञान वा राज्यादि ऐश्वर्य्य की प्राप्ति के लिये (सुपथा) अच्छे धर्मयुक्त आप्त लोगों के मार्ग से (विश्वानि) सम्पूर्ण (वयुनानि) प्रज्ञान और उत्तम कर्म (नय) प्राप्त कराइये और (अस्मत्) हमसे (जुहुराणं) कुटिलतायुक्त (एनः) पापरूप कर्म को (युयोधि) दूर कीजिये, इस कारण हम लोग (ते) आपकी (भूयिष्ठाम्) बहुत प्रकार की स्तुतिरूप (नम, उक्ति) नम्रतापूर्वक प्रशंसा (विधेम) सदा किया करें और सर्वदा आनन्द में रहें ॥

भावा०—हे सर्वशक्तिसम्पन्नप्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आप हमारे सब कर्मों तथा मनोरथों को जानते हुए हम सबको देशात्मोन्नति के लिये शुभमार्ग मे चलायें और हमसे सम्पूर्ण पापों को दूर करें, हम आपको वारंवार मन, वाणी तथा शरीर से प्रणाम करते है ॥

इतीश्वर स्तुतिप्रार्थनोपासना प्रकरणम्

अथ स्वस्तिवाचनम्

अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् ।
होतारं रत्नधातमम् ॥ १ ॥ ऋग्० १ । १ । १

पदा०—(पुरोहितं) पूर्व से ही जगत् को धारण करने वाले (यज्ञस्य) हवन, विद्यादि दान तथा शिल्प क्रिया के (देवं) प्रकाशक (ऋत्विजम्) प्रत्येक ऋतु में पूजनीय (होतारं) जगत् के सुन्दर पदार्थों को देने वाले (रत्नधातमम्) उत्तम २ रत्नादिकों के धारण करने वाले (अग्नि) प्रकाशस्वरूप परमात्मा की मैं उपासक (ईडे) स्तुति करता हूं ।

भावा०—हे ज्ञानस्वरूप परमात्मन् ! आप सृष्टि के आरम्भ से ही इस सम्पूर्ण जगत् को धारण करके पालन पोषण कर रहे हैं, आप यज्ञादि क्रियाओं के प्रकाशक तथा जगत् के उत्तमोत्तम पदार्थों के दाता और मनुष्यमात्र के पूजनीय अर्थात् उपासना करने योग्य हो ॥

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव ।
सचस्वा नः स्वस्तये ॥ २ ॥ ऋग्० १ । १ । ६

पदा०—(अग्ने) हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर (सः) लोक वेद प्रसिद्ध आप (सूनवे, पिता, इव) पिता पुत्र के लिये जैसे, (नः) हमारे लिये (सूपायनो, भव) सुख के हेतु पदार्थों की प्राप्ति कराने वाले हों, और (नः) हम लोगों का (स्वस्तये) कल्याण के लिये (सचस्व) मेल करायें ।

भावा०—हे हमारे परमपिता परमात्मन् ! जैसे पिता पुत्र को शिक्षा करता हुआ उसके लिये आवश्यक पदार्थों का संग्रह करता है उसी प्रकार आप भी हमारे सुख के साधक पदार्थों को उपलब्ध करायें और ऐसी कृपा करें कि हम सब परस्पर एक दूसरे को मित्रता की दृष्टि से देखें जिससे हम शीघ्र ही कल्याण को प्राप्त हों ॥

स्वस्तिनो मिमीतामश्विना भगः स्वस्ति देव्यदितिरनर्वणः ।
स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः स्वस्ति द्यावापृथिवी सुचेतुना ॥ ३ ॥

ऋग्० ५ । ५२ । ११

पदा०—(अश्विना) अध्यापक तथा उपदेशक (नः) हमारे लिये (स्वस्ति, मिमीतां) कल्याणकारी हों (भगः) ऐश्वर्य्यसम्पन्न आप वा वायु (स्वस्ति) सुखकारक हों (अदितिः) अखण्डित (देवी) दिव्यगुण युक्त विद्युत् विद्या (अनर्वणः) ऐश्वर्य्यरहित हम लोगों के लिये कल्याणकारी हो (पूषा) पुष्टिकारक (असुरः) प्राणों के देने वाले मेघादि (स्वस्ति, दधातु) कल्याण को देवें (द्यावा, पृथिवी) अन्तरिक्ष तथा पृथिवी (सुचेतुना) विज्ञान से युक्त होकर (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) सुखदायक हों ।

भावा०—हे हमारे परमपिता जगदीश्वर ! आप ऐसी कृपा करें कि हमारे अध्यापक तथा उपदेशक महात्मा अपने सदुपदेश द्वारा हमारी आत्मा को बलवान् बनावें, हे ऐश्वर्य्यसम्पन्न पिता ! यह आपके रचे हुए वायु, जल तथा अग्नि आदि दिव्य पदार्थ हमारे लिये सुखकारक हों, आप मेघों द्वारा सदा हमारे प्राणों की रक्षा करें और हमारा निवास स्थान पृथिवी तथा महान् आकाश जिसमें हम अपनी क्रिया करते हैं यह हमारे लिये सुखदायक हों ॥

स्वस्तये वायुमुपब्रवामहै सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः ।
बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये स्वस्तय आदित्यासो भवन्तु नः ॥४॥

ऋग्० ५ । ५२ । १२

पदा०—हे परमात्मन् ! आपकी कृपा से (आदित्यासः) ४८ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य्य धारण करने वाले ब्रह्मचारी (नः) हम लोगों के मध्य में (स्वस्तये, भवन्तु) कल्याणार्थ उत्पन्न हों (यः) जो (स्वस्तये) शान्ति के लिये हमें (वायु) वायुविद्या का (उप ब्रवाम) भलेप्रकार उपदेश करें (सोमं) ऐश्वर्य्य हमारे लिये कल्याणकारी हो, आप (भुवनस्य पतिः) सम्पूर्ण संसार की रक्षा करने-वाले तथा (बृहस्पतिं) वेदवाणी के स्वामी होने से (सर्वगणं) सम्पूर्ण गण= समूह आपका (स्वस्तये) कल्याण के लिये आश्रयण करते हैं ।।

भावा०—हे सकल विद्याओं के निधि भगवन् ! आप ऐसी कृपा करें कि ब्रह्मचारी लोग ब्रह्मचर्यादि आश्रमों का पूर्णतया पालन करते हुए शारीरिक तथा आत्मिक उन्नति द्वारा संसार का उपकार करने वाले हों, जो जल तथा वायु आदि तत्वों की विद्या को पूर्णतया जानकर हमारे लिये उनका उपदेश करें ताकि हम उनको उपयोग में लाकर ऐश्वर्य्यसम्पन्न हों, हे हमारे पिता परमे-श्वर ! आपकी कृपा से हम लोग वेदविद्या का अध्ययन करते हुए शान्त्यादि गुणों वाले हों, हे प्रभो ! संसार के सम्पूर्ण प्राणी आप ही से कल्याण की आशा करते हैं, क्योंकि आप कल्याणस्वरूप हैं ॥

विश्वेदेवा नो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये।
देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये स्वस्ति नो रुद्रः पात्वंहसः ॥५॥

पदा०—हे परमात्मन् (अद्य) आज=यज्ञ के दिन (नः) हमारे (स्वस्तये) आनन्द के लिये (विश्वेदेवाः) सब विद्वान् लोग हों, और (वैश्वानरः) सब मनुष्यों को उपयोगी तथा सर्वत्र व्यापक (अग्निः) अग्नि (स्वस्तये) मंगल के लिये हो, (ऋभवः) विशिष्ट मेधावी (देवाः) विद्वान् लोग (अवन्तु) हमारी रक्षा करें, और (नः) हमारे (स्वस्तये) कल्याण के लिये (रुद्रः) दुष्टों को रुलाने वाले आप (अंहसः) पापरूप अपराध से (स्वस्ति, पातु) शान्तिपूर्वक हमारी रक्षा करें।

भावा०—हे यज्ञपति परमेश्वर! आपकी कृपा से हम सब यज्ञों के करने वाले हों, सम्पूर्ण याज्ञिक विद्वान् हमारे यज्ञ में सम्मिलित होकर हमें नाना विद्याओं का उपदेश करें जिससे हम आनन्दित हों, और यह भौतिकाग्नि जो यज्ञ का मुख्यसाधन है वह हमारे लिये कल्याणकारी हो, मेधावी विद्वान् पुरुष अपने सदुपदेश द्वारा दुष्कर्मों से हमको सदा बचावें, और हे रुद्ररूप परमेश्वर! आप हमारे पापरूप अपराधों से हमारा सर्वनाश न करें किन्तु पाप फल देकर भी हमारी रक्षा करें॥

स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवति।
स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्ति नो अदिते कृधि ॥६॥

पदा०—(अदिते) हे अखण्डितविद्यायुक्त परमेश्वर! (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) कल्याण (कृधि) करो (च) और (इन्द्रः) वायु (च) और (अग्निः) विद्युत् (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) कल्याणदायक हों (पथ्ये, रेवति) धनादिसम्पन्नशुभमार्ग में हमारे लिये (स्वस्ति) कल्याण हो, और (मित्रावरुणा) प्राण तथा उदानवायु (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) सुखकारी हों।

भावा०—हे सर्वविद्याओं के निधि परमात्मन्! आप हमारे लिये सुखदायक हों और वायु, विद्युत् तथा धनादि ऐश्वर्य्य हमारे लिये कल्याणदायक हों, हे भगवन्! आप ऐसी कृपा करें कि प्राणवायु तथा उदानवायु हमारे शरीर में यथावस्थित वर्तें जिससे हमें कोई क्लेश प्राप्त न हो॥

स्वस्ति पन्थामनुचरेम सूर्याचन्द्रमसाविव।
पुनर्ददताघ्नता जानता सङ्गमे महि ॥७॥

ऋग्० ५।५१।३

पदा०—हे परमेश्वर! हम लोग (पन्थां) मार्ग में (स्वस्ति) आनन्द पूर्वक (अनुचरेम) विचरें (सूर्याचन्द्रमसाविव) जैसे सूर्य्य तथा चन्द्रमा बिना किसी उपद्रव के विचरते हैं, (पुनः) फिर (ददता) सहायता देने वाले (अघ्नता) किसी को दुःख न देने वाले (जानता) ज्ञानसम्पन्न बन्धु आदिकों के साथ (संगमेमहि) मिलकर वर्त्तें ॥

भावा०—हे परमपिता परमेश्वर! जैसे सूर्य्य तथा चन्द्रमा निरुपद्रव अपने नियम का पालन करते हुए विचरते हैं इसी प्रकार हम लोग भी निर्विघ्न शुभमार्ग में चलकर अपनी अभीष्ट सिद्धि को प्राप्त हों, और हे भगवन्! आप ऐसी कृपा करें कि हम लोग एक दूसरे को मित्रता की दृष्टि से देखते हुए परस्पर सहायक हों ॥

ये देवाना यज्ञिया यज्ञियानां मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
तेनो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥८॥

पदा०—(ये) जो (यज्ञियानां, देवानां) यज्ञ के योग्य विद्वानों के बीच में (यज्ञियाः) यज्ञोपयोगी हैं, और (मनोर्यजत्राः) मननशील पुरुषों के साथ संगति करने वाले (अमृता) जीवन्मुक्त जैसे (ऋतज्ञाः) सत्यज्ञानी हैं (ते) वे आप लोग (अद्य) आज=याग दिन में (उरुगायं) बहुत कीर्तिवाले विद्याबोध को (नः) हमारे लिये (रासन्तां) देवें, और (यूयं) आप सब (स्वस्तिभिः) कल्याणकारी पदार्थों से (सदा) सब काल में (नः) हमारी (पात) रक्षा करें ॥

भावा०— परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे याज्ञिक पुरुषो! तुम अपने यज्ञों में मननशील, सत्यवादी तथा ब्रह्मज्ञानसम्पन्न पुरुषों को सत्कारपूर्वक बुलाओ, और उनसे प्रार्थना करो कि हे भगवन! आप हमें ब्रह्मविद्या का उपदेश करें जिससे सब काल में हमारी रक्षा हो ॥

येभ्यो माता मधुमत्पिन्वते पयः पीयूषं द्यौरदितिरद्रिबर्हाः ।
उकथशुष्मान् वृषभरान्स्वप्नसस्ताँ आदित्याँ अनुमदा स्वस्तये ॥९॥

पदा०—(येभ्यः) जिन आदित्य ब्रह्मचारियों के लिये (माता) सब को निर्माण करने वाली पृथिवी (मधुमत्, पयः) माधुर्य्ययुक्त दुग्धादि पदार्थ (पिन्वते) देती है और (अदितिः) अखण्डनीय (अद्रिबर्हाः) मेघों से बढ़ा हुआ (द्यौः) अन्तरिक्ष लोक (पीयूषं) सुन्दर जलादि सेचन करता है, उन (उकथशुष्मान्) अत्यन्त बलवाले (वृषभरान्) यज्ञ द्वारा वृष्टि करने वाले

(स्वप्नसः) शोभन कर्मवाले (तान्, आदित्यान्) उन आदित्य ब्रह्मचारियों को (स्वस्तये) उपद्रव न होने के लिये (अनुमद) प्राप्त कराइये ।

भावा०—इस मंत्र में परमात्मा से यह प्रार्थना कीगई है कि हे भगवन्! जिन आदित्य ब्रह्मचारियों को मातारूप पृथिवी अनेक पुष्टिकारक पदार्थ खाने को देती और अन्तरिक्ष लोक पवित्र जलों की वर्षा द्वारा जिन्हें तृप्त करता है उन वेदोक्त कर्म करने वाले ब्रह्मचारियों की आप सब उपद्रवों से रक्षा करें ताकि वह ब्रह्मविद्या के उपदेश द्वारा हमारे जीवन को उच्च बनायें ॥

सम्राजो ये सुवृधो यज्ञमाययुरपरिह्वृता दधिरे दिवि क्षयम् ।
ताँ आ विवास नमसा सुवृक्तिभिर्महो आदित्याँ अदितिं स्वस्तये ॥१०

पदा०—(सम्राजः) अपने तेज से भलेप्रकार विराजमान (सुवृधः) ज्ञानादि से सम्पन्न (ये, देवाः) जो विद्वान् लोग (यज्ञं) यज्ञ को (माययुः) प्राप्त होते, और जो (अपरिह्वृताः) किसी से भी पीड़ित न होने वाले देवता लोग (दिवि) द्युलोकवर्ती बड़े २ स्थानों में (क्षयं) निवास (दधिरे) करते हैं (तान्) उन (महो, आदित्यान्) गुणों से अधिक आदित्य ब्रह्मचारियों और (अदिति) अखण्डनीय आत्मविद्या को (नमसा) हव्यान्न के साथ और (सुवृक्तिभिः) उत्तम स्तुतियों के साथ (स्वस्तये) कल्याण के लिये (आ,विवास) सेवन कराओ ॥

नृचक्षसो अनिमिषन्तो अर्हणा बृहद्देवासो अमृतत्वमानशुः ।
ज्योतीरथा अहिमाया अनागसो दिवो वर्ष्माणं वसते स्वस्तये ॥११

पदा०—(नृचक्षसः) कर्मकारी मनुष्यों के द्रष्टा (अनिमिषन्तः) आलस्यरहित (अर्हणाः) लोगों के पूजनीय (देवासः) विद्वान् लोग जो (बृहत्) बड़े (अमृतत्वं) अमृत को (आनशुः) प्राप्त, और (ज्योतीरथाः) सुन्दर प्रकाशमय यानों से युक्त हैं (अहिमायाः) जिनकी बुद्धि को कोई दबा नहीं सकता, ऐसे (अनागसः) पापरहित वह आदित्य ब्रह्मचारी जो (दिवः) अंतरिक्ष लोक के (वर्ष्माणं) ऊंचे देश को (वसते) ज्ञानादि द्वारा व्याप्त करते हैं वह (स्वस्तये) हमारे लिये कल्याणकारी हो ॥

भावा०—हे सर्वद्रष्टा तथा सबके पूजनीय परमात्मन! जीवन्मुक्त विद्वान लोग जिनकी बुद्धि को कोई अतिक्रमण नहीं करसकता, ऐसे पाप रहित आदित्य ब्रह्मचारी, जो अपने ज्ञानद्वारा अंतरिक्षलोकपर्यन्त व्याप्त होरहे हैं अर्थात् विद्या द्वारा लोक लोकान्तरों में जिनका यश विस्तृत होरहा है वे

अपने सदुपदेशों से हमें पवित्र करें अर्थात् हमारे लिये विद्या तथा धर्म का उपदेश करते हुए हमें सदाचारी बनावें ताकि हम सुखपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करें ॥

भावा०—हे सम्पूर्ण ब्रह्माण्डपति परमात्मन् ! आपकी इस सृष्टि में ज्ञानसम्पन्न बड़े २ विद्वान् यज्ञों द्वारा आपका पूजन करते और आपके इस विस्तृत राज्य में पृथिवी से लेकर द्युलोकपर्य्यन्त दिव्यगुणों से सुभूषित अनेक मनुष्य तथा सूर्य्य चन्द्रमादि निवास करते हुए आपकी महिमा को दर्शाते और आप नियमपूर्वक सबका रक्षण तथा पालन पोषण करते हैं, हे दयामय ! हम पर ऐसी दया करो कि हव्यान्न के साथ आदित्य ब्रह्मचारी हमें प्राप्त हों और वे वेदविद्या के उपदेशों द्वारा हमारा सदा कल्याण करें ॥

को वः स्तोमं राधति यं जुजोषथ विश्वे देवासो मनुषो यतिष्ठन ।
को वोऽध्वरं तु विजाता अरं करद्यो नः पर्षदत्यंहः स्वस्तये ॥२१॥

पदा०—(विश्वे, देवासः) हे सम्पूर्ण विद्वानो ! (यं, जुजोषथ) जिस स्तुति समूह का तुम सेवन करते हो उस (स्तोमं) सामवेदोक्त स्तुतिसमूह को (वः) तुम लोगों के मध्य में (कः) कौन (राधति) बनाता, और (तुविजाताः) हे अनेक प्रकार के जन्म वाले (मनुषः) मननशील विद्वान् लोगो ! (यतिष्ठन) जितने तुम लोग स्थित हो (वः) तुम सब के बीच में (कः) कौन (अध्वरं) यज्ञ को (अरम्, करत्) अलंकृत करता है (यः) जो यज्ञ (नः) हमारे (अंहः) पाप को (अति) हटाकर (स्वस्तये) कल्याण के लिये (पर्षत्) प्रवृत्त होता है ॥

भावा०—इस मंत्र में पूर्वपक्ष विधि से प्रश्नोत्तर की रीति पर परमात्मा ने यह भाव भरा है कि हे विद्वानो ! जिन स्तुति विधायक वाक्यों से तुम परमात्मा की स्तुति करते हो उन स्तुतिवाक्यों को तुम में से कौन बनाताऔर यज्ञ को कौन अलंकृत करता है, जो यज्ञ तुम्हारे पापों को निवृत्त करके तुम्हें कल्याण का मार्ग दिखलाता है अर्थात् सामवेदोक्त स्तुति वाक्यों का कर्त्ता और यज्ञ की विधि बतलाने वाला कौन है ? (इसका उत्तर वेद में यथास्थान यह दिया है कि यह दोनों भाव उसी परमात्मा से आते हैं जो हमारा पूज्यपिता तथा हमारे कर्मों का द्रष्टा है) ॥

येभ्यो होत्रां प्रथमामायेजे मनुः समिद्धाग्निर्मनसा सप्तहोतृभिः ।
त आदित्या अभयंशर्मयच्छत सुगानः कर्तसुपथा स्वस्तये ॥१३॥

पदा०—(येभ्यः) जिन आदित्य ब्रह्मचारियों के लिये (समिद्धाग्निः)

अग्निहोत्री (मनुः) मननशील विद्वान् (मनसा) मन से (सप्तहोतृभिः) सात-होताओं से (प्रथमां) मुख्य (होत्रां) यज्ञ को (आयेज) करता है (ते, आदित्याः) वे आदित्य ब्रह्मचारी (अभयं, शर्म) भय रहित सुख को (यच्छत) देवें, और (नः) हमारे (स्वस्तये) कल्याण के लिये (सुपथा) शोभन वैदिक मार्गों को (सुगा) भलेप्रकार प्राप्तव्य (कर्त) करें ॥

भावा०—इस मंत्र का आशय यह है कि जिन आदित्य ब्रह्मचारियों के सन्मानार्थ मनस्वी विद्वान बड़े २ यज्ञ करते हैं वह ब्रह्मचारी हमारे कल्याण के लिये उस पवित्र वैदिकधर्म का उपदेश करें जिससे मनुष्यजन्म के फल-चतुष्टय की प्राप्ति होती है, या यों कहो कि वह ब्रह्मचारी हमें उस परंज्योति तथा दिव्यगुणसम्पन्न परमात्मा का उपदेश करें जिसको प्राप्त होकर पुरुष निर्भय हुआ स्वेच्छाचारी होकर विचरता है ॥

य ईशिरे भुवनस्य प्रचेतसो विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च मन्तवः ।
ते नः कृतादकृतादेनसस्पर्यद्या देवासः पिपृता स्वस्तये ॥१४॥

पदा०-(ये, देवासः) जो विद्वान् लोग (प्रचेतसः) उत्तम ज्ञान वाले (मन्तवः) सब के जानने वाले (स्थातुः) स्थावर (च) और (जगतः) जंगम (विश्वस्य, भुवनस्य) सब लोक के (ईशिरे) स्वामी बनते हैं (ते) वे (अद्य) आज (स्वस्तये) कल्याण के लिये (कृतात्) किये हुए और (अकृतात्) नहीं किये हुए (एनसः) पाप से (परि, पिपृता) पार करें ॥

भावा०—हमारे विचार में यदि यह मंत्र ईश्वरपरक लगाया जाय तो बड़े उच्चादर्श का बोधक प्रतीत होता है, जैसाकि हे दिव्यज्योति परमात्मन्! आप अपने उत्तम ज्ञान से सब के जानने वाले और स्थावर तथा जंगम सब विश्ववर्ग के स्वामी हैं, हे भगवन्! आप हमें सब प्रकार के पापों से बचाकर कल्याण की ओर लेजायें अर्थात् जिन पापों के करने की सम्भावना है उनसे आप हमारी रक्षा करें ॥

भरेष्विन्द्रं सुहवं हवामहेऽहोमुचं सुकृतं दैव्यं जनम् ।
अग्निं मित्रं वरुणं सातये भगं द्यावापृथिवी मरुतः स्वस्तये ॥१५॥

पदा०—हे ईश्वर ! (अहोमुचं) पाप के हटाने वाले (सुहवं) जिसका बुलाना अच्छा हो ऐसे (इन्द्रम्) शक्तिशाली विद्वान् को (भरेषु) संग्रामों में (हवामहे) अपनी रक्षा के लिये बुलावें, और (सुकृतम्) श्रेष्ठ कर्म वाले (दैव्यं) आस्तिक (जनम्) पुरुष को बुलावें, और (सातये) अन्नादि लाभ

के लिये (स्वस्तये) निरुपद्रव के लिये (अग्निं) अग्निविद्या को (मित्रं) प्राणविद्या को (भगम्, वरुणम्,) सेवनीय जलविद्या को, और (द्यावापृथिवी) अन्तरिक्ष तथा पृथिवी की विद्या को (मरुतः), वायुविद्या को, हम सेवन करें ॥

भावा०—हे परमात्मन् ! आप ऐसी कृपा करें कि बड़े २ शक्तिसम्पन्न विद्वान् पुरुष जो पाप से सर्वथा पृथक् हैं वे इस संसाररूप संग्राम में आकर हमारी रक्षा करें, और शान्तिपूर्वक जीवन निर्वाह के लिये अग्नि तथा जल आदिकों की विद्याओं को भले प्रकार जानें अर्थात् प्राण, अपानादिकों की विद्या को जानकर सदा नीरोग रहें, और जल, वायु आदिकों की विद्या द्वारा यानादिकों को रचकर ऐश्वर्य्य सम्पन्न हो ॥

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम् ।
दैवीं नावं स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमारुहेमा स्वस्तये ॥ १६ ॥

पदा०—(सुत्रामाणं) भलेप्रकार रक्षा करने वाली (पृथिवीं) लम्बी चौड़ी (अनेहसं) उपद्रवरहित (सुशर्माणं) अच्छा सुख देने वाला (अदिति) जो न टूट सके (सुप्रणीतिम्) जो भलेप्रकार बनाई गई है (द्याम्) अन्तरिक्षलोकस्थ (स्वरित्राम्) सुन्दर यन्त्रों से युक्त (अस्रवन्तीम्) दृढ़ (दैवीं, नावं) विद्युत्सम्बन्धी नौका के ऊपर अर्थात् विमान के ऊपर हम लोग (स्वस्तये) सुख के लिये (आरुहेम) चढ़ें ॥

भावा०—इस मंत्र में आकाशयान का वर्णन किया गया है, परमात्मा उपदेश करते हैं कि तुम लोग, जो यान बनाओ वह कैसा हो ? भलेप्रकार रक्षा करने वाला, विस्तृत, सब उपद्रवों से रहित, सुखपूर्वक बैठने योग्य, जिस में सब कला यंत्र सुन्दर तथा ऐसे दृढ़ लगे हों जो टूट न सकें, इत्यादि सुरक्षित विमान में बैठकर तुम लोग सुखपूर्वक विचारो ॥

विश्वे यजत्रा अधि वोचतोतये त्रायध्वं नो दुरेवाया अभिहुतः ॥
सत्यया वो देवहूत्या हुवेम शृण्वतो देवा अवसे स्वस्तये ॥ १७ ॥

पदा०— (विश्वे, यजत्राः) हे पूजनीय विद्वानो ! (ऊतये) हमारी रक्षा के लिये (अधिवोचत) आप उपदेश करें, और (अभिहुतः) पीड़ा देने वाली (दुरेवायाः) दुर्गति से (नः) हमारी (त्रायध्वं) रक्षा करो (देवाः) हे विद्वान् लोगो ! (शृण्वतः) हमारी स्तुति सुनने वाले आपको (सत्यया) सच्ची (वः) तुम्हारी (देवहूत्या) देवताओं के योग्य स्तुति से हम (अवसे) शत्रुओं से रक्षा करने के लिये और (स्वस्तये) सुख के लिये (हुवेम) बुलाया करें ॥

भावा०—हे वेदविद्या के ज्ञाता विद्वानो! आप वेदों के उपदेश द्वारा हमारी रक्षा करें अर्थात् हमको दुष्कर्मों से हटाकर शुभकर्मों में लगावें जिससे हम पीड़ा देने वाली दुर्गति को प्राप्त न हों, हे स्तुति के योग्य विद्वानो! हम आपका आह्वान करते है, कृपाकरके आप आइये और आकर हमें सदुपदेश कीजिये जिससे हम वेदानुकूल आचरण करते हुए सुख को प्राप्त हों॥

अपामीवामप विश्वामनाहुतिमपारातिं दुर्विदत्रामघायतः।
आरे देवा द्वेषो अस्मद्युयोतनोरुणः शर्म यच्छता स्वस्तये॥१८॥

पदा०—(देवाः) हे विद्वान् लोगो! (अपामीवां) रोगादिकों को (अप) पृथक् करो (विश्वाम्) सब (अनाहुतिं) मनुष्यों की देवताओं के न बुलाने की बुद्धि को (अप) पृथक् करो (अरातिम्) लोभ बुद्धि को (अप) पृथक् करो (अघायतः) पाप की इच्छा करने वाले शत्रु को (दुर्विदत्राम्) दुष्ट बुद्धि को दूर करो (द्वेषः) द्वेष करने वाले सब को (अस्मत्) हमसे (आरे) दूर (युयोतन) पृथक् करो (नः) हमारे लिये (उरु, शर्म) बहुत सुख (स्वस्तये) कल्याण के लिये (यच्छत) देओ॥

भावा०—हे वेदविद्या के अनुशीलन करने वाले विद्वानो! आप अपने उपदेशों द्वारा हमें शारीरिक उन्नति का प्रकार बतलावें जिससे हम रोगादिकों से रहित होकर स्वस्थ रह सकें, हमें विद्वानों के सत्कार करने का उपदेश करें, हम लोग मोह से पृथक् रहें, हमसे द्वेष करने वाले शत्रुओं की बुद्धियों को सन्मार्ग में लगाओ ताकि वह हमको शत्रु की दृष्टि से न देखें, हे विद्वज्जनो! हम प्रार्थना करते हैं आप अपनी कृपा से हमें कल्याण का मार्ग बतलावें जिसका अवलम्बन कर सुख से जीवन व्यतीत करें॥

अरिष्टः स मर्त्तो विश्व एधते प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि।
यमादित्यासो नयथा सुनीतिभिरति विश्वानि दुरिता स्वस्तये॥१९॥

पदा०—(आदित्यासः) हे आदित्य ब्रह्मचारियो! (यम्) जिन पुरुषों को (सुनीतिभिः) अच्छी नीतियों से (विश्वानि, दुरिता) सब पापों को (अति) उल्लङ्घन करके (नयथा) सन्मार्ग में प्रवृत्त करते हो (सः, विश्वः, मर्तः) वे सब पुरुष (अरिष्टः) किसी से पीड़ित न होकर (एधते) बढ़ते हैं, और (धर्मणः) धर्मानुष्ठान के (परि) पीछे (प्रजाभिः) पुत्रपौत्रादिकों से (प्र, जायते) भलेप्रकार प्रकट होते हैं॥

भावा०—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे ब्रह्मचारियो! तुम प्रजाजनों को

सदुपदेश करो जिससे वे पापों से निवृत्त होकर सन्मार्ग में प्रवृत्त हों, वे धर्मानुष्ठान करते हुए पुत्र पौत्रादिकों से वृद्धि को प्राप्त हों और उनमें वह शक्ति उत्पन्न करो जिससे वे सब क्लेशों से पृथक् रहकर सुख से अपना जीवन व्यतीत करें ॥

यं देवासोऽवथ वाजसातौ यं शूरसाता मरुतो हितेधने।
प्रातर्यावाणं रथमिन्द्रसानसिमरिष्यन्तमा रुहेमा स्वस्तये ॥२०॥

पदा०—(मरुतो, देवासः) हे मितभाषी देवता विद्वान् लोगो ! (वाजसातौ) अन्न के लाभ के लिये (यं, रथम्) जिस रमणीय गमनसाधन=वाष्पयानादि की (अवथ) रक्षा करते हो, और (हिते, धने) रखे हुए धन के कारण (शूरसाता) संग्राम में जिस रथ को रक्षा करते हो (इन्द्रसानसिम्) बड़े यन्त्रकला के विद्वानों से भी सेवनीय (प्रातर्यावाणम्) प्रातःकाल से ही गमन करने वाले उसी रथ पर हम (स्वस्तये) कल्याण के लिये (आरुहेम) चढ़ें ॥

भावा०—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे उपयुक्त भाषण करने वाले विद्वानो ! तुम लोग पदार्थविद्या=साइंस का उपदेश करते हुए वाष्पयान तथा जलादि यानों के निर्माण का प्रकार वर्णन करो जिससे पदार्थविद्या की रक्षा द्वारा कलाकौशल के निर्माण में सुगमता हो, हे युद्धविद्या के ज्ञाता विद्वानो ! तुम युद्ध के लिये बड़े२ कलायंत्रों से सुदृढ़ यान निर्माण कराओ, जो बैठने में कष्टदायक न हों और जिनपर चढ़कर सुगमता से शत्रुओं को विजय करसकें ॥

स्वस्ति नः पथ्यासु धन्वसु स्वस्त्यप्सु वृजने स्वर्वति।
स्वस्ति नः पुत्रकृथेषु योनिषु स्वस्ति राये मरुतो दधातन ॥२१॥

पदा०—(मरुतः) मितभाषी विद्वान् लोगो ! (नः) हमारे लिये (पथ्यासु) मार्ग के योग्य अर्थात् जलसहित देशों में (स्वस्ति) कल्याण करो, और (धन्वसु) जलरहित देशों में (स्वस्ति) जल की उत्पत्तिरूप कल्याण करो, और (अप्सु) जलों में कल्याण करो और (स्वर्वति) सब आयुधों से युक्त (वृजने) शत्रुओं को दबाने वाली सेना में (स्वस्ति) कल्याण करो, और (नः) हमारे (पुत्रकृथेषु) पुत्रों के करने वाले (योनिषु) उत्पत्ति स्थानों में (स्वस्ति) कल्याण करो, और (राये) गवादि धन के लिये कल्याण को (दधातन) धारण करो ॥

भावा०—परमात्मा आज्ञा देते हैं कि हे प्रजाजनो ! तुम लोग उपर्युक्त विद्वानों से इस प्रकार प्रार्थना करो कि हे भगवन् ! आप हमें ऐसे उपाय तथा वह

विद्या सिखलावें जिससे जलीयप्रदेशों, जलरहित देशों तथा जलों में अपना कल्याण देखें, और सब अस्त्र शस्त्र सहित शत्रुओं की सेना को विजय कर सकें, हे सब विद्याओं के जानने वाले विद्वानो! आप हमें बलवान् पुत्रों के उत्पन्न करने और धनादि ऐश्वर्य्यसम्पन्न होने का उपदेश करें जिससे हमलोग समर्थ होकर अपने कार्यों को विधिवत् करसकें॥

स्वस्तिरिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा रेक्णस्वत्यभि या वाममेति।
सा नो अमा सो अरणे निपातु स्वावेशा भवतु देवगोपा॥२२॥

ऋग्० १०।६३।४

पदा०—(या) जो पृथिवी जाने वालों के (प्रपथे) अच्छे मार्ग के लिये (स्वस्तिः, इत्, हि) कल्याणकारी ही होती है, और जो (श्रेष्ठा) अति सुन्दर (रेक्णस्वती) धन वाली है तथा (वामम्) सेवन के योग्य यज्ञ को (अभि, एति) प्राप्त होती है (स) वही पृथिवी (नः) हमारे (अमा) गृह की (निपातु) रक्षा करे (सा, उ) वह पृथिवी (अरणे) वनादि देशों में हमारी रक्षिका हो, और (देव, गोपा) विद्वान् लोग जिसके रक्षक हैं ऐसी वह पृथिवी हमारे लिये (स्वावेशा) अच्छे स्थानवाली (भवतु) हो॥

भावा०—हे परमात्मन्! आप कृपाकरके हमारे लिये विस्तृत सुन्दर मार्गों वाली, अन्नादि विविध प्रकार के धन उत्पन्न करने वाली, यज्ञ के सेवन करने योग्य, वनादि में जिसका सुप्रबन्ध हो, जिसमें विद्वानों द्वारा उत्तम गृह बनाये जासकें और सब प्रकार से निर्विघ्न हो, ऐसी भूमि हमें प्राप्त करायें, यह हमारी प्रार्थना है॥

इषे त्वोर्जेत्वा वायवस्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण आप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा मा वस्तेन ईशत माघशꣳसो ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि॥२३॥ यजु० १।१

पदा०—हे ईश्वर! (इषे) अन्नादि इष्ट पदार्थों के लिये (त्वा) तुमको (आश्रयाम इति शेषः) आश्रयण करते हैं, और (ऊर्जे) बलादि के लिये (त्वा) तुमको आश्रयण करते हैं, हे वत्स जीवो! तुम (वायवः) वायु सदृश पराक्रम वाले (स्थ) हो (सविता, देवः) सब जगत् का उत्पादक देव (श्रेष्ठतमाय, कर्मणे) यज्ञरूप श्रेष्ठ कर्मों के लिये (वः) तुम सबों को (प्रार्पयतु) सम्बद्ध करे, उस यज्ञ द्वारा (इन्द्राय, भागं) अपने ऐश्वर्य्य के भाग को (आप्यायध्वम्)

बढ़ाओ, यज्ञ सम्पादन के लिये (अघ्न्याः) न मारने योग्य (प्रजावतीः) बछड़ों सहित (अनमीवाः) व्याधिविशेषों से रहित (अयक्ष्माः) यक्ष्म=तपेदिक आदि बड़े रोगों से शून्य "गौयें सम्पादन करो" (वः) तुम लोगों के बीच जो(स्तेनः) चौर्यादि दुष्टगुण सम्पन्न हों वह उन गौवों का (मा, ईशत) मालिक न बनें, और (अघ, शंसः) अन्य पापी भी (मा) उनका रक्षक न हो, ऐसा यत्न करो जिससे (बह्वीः, ध्रुवाः) बहुत सी चिरकाल पर्यन्त रहने वाली गांये (अस्मिन्, गोपतौ) निर्दुष्ट गोरक्षक के पास (स्यात्) बनी रहें, और परमात्मा से प्रार्थना करो कि (यजमानस्य) यज्ञ करने वाले के पशुओं की हे ईश्वर ! तू (पाहि) रक्षा कर ॥

भावा०—हे परमपिता परमात्मन् ! आप हमारा पालन पोषण करते हुए हमें शारीरिक, आत्मिक तथा सामाजिक बल प्रदान करें जिससे हम निरालस होकर यज्ञादि कर्मों में प्रवृत्त रहें, अपने ऐश्वर्य्य को बढ़ाने, और सदा पूजनीय तथा नीरोग गौयें आपकी कृपा से हमें प्राप्त हों जिनके दुग्ध तथा घृतादि द्वारा हम लोग यज्ञ का सम्पादन करें, हे भगवन् ! ऐसी कृपा करो कि हमारा यज्ञ का साधक पश्वादि धन नाश न हो, और दुष्ट पापी तथा हिंसक लोग कदापि इस धन के स्वामी न हों जिससे यह धन चिरकाल पर्य्यन्त स्थिर रहे ॥

आनो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासोऽअपरीतास उद्भिदः।
देवानो यथा सदमिद्वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवे दिवे ॥

पदा०—हे ईश्वर ! (नः) हमको (भद्राः) स्तुति के योग्य (क्रतवः) संकल्प (आ, यान्तु) प्राप्त हों (विश्वतः) सब ओर से (अदब्धासः) अवज्ञारहित (अपरीतासः) सर्वोत्तम (उद्भिदः) दुःखनाशक (देवाः) विद्वान् लोग (यथा) जैसे (नः) हमारी (सदम) सभा में वा सर्वदा (वृधे, एव) वृद्धि के लिये वा (असन्) हों, वैसे ही (दिवे, दिवे) प्रतिदिन (अप्रायुवो, रक्षितारः) प्रमादशून्य रक्षा करने वाले बनाओ ॥

भावा०—हे जगदीश्वर ! आप ऐसी कृपा करें कि हमारे संकल्प सदा भद्र हों अर्थात् हम लोग किसी का अनिष्ट चिन्तन न करते हुए सदैव परोपकार में प्रवृत्त रहें, हम सर्वकाल विद्वानों का सत्संग करें, वे विद्वान् हमारे शुभचिन्तक हों, और प्रमाद रहित होकर हमें वैदिकपथ पर चलावें जिससे हमारा मनुष्यजन्म सफल हो, यह हमारी आपसे प्रार्थना है ॥

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानां रातिरभिनो निवर्त्तताम् ।
देवाना७ँसख्यमुपसेदिमा वयं देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे॥

पदा०—हे भगवन् ! (ऋजूयतां) सरलतया आचरण करने वाले (देवानाम्) विद्वानों की (भद्रा) कल्याण करने वाली (सुमतिः) अच्छी बुद्धि (नः) हमको (अभि, निवर्तताम्) प्राप्त हो, और (देवानां, रातिः) विद्वानों का विद्यादि पदार्थों का दान "प्राप्त हो" (देवानां) विद्वानों के (सख्यम्) मित्र-भाव को (वयं) हम लोग (उपसेदिम) प्राप्त हों, जिससे वे (देवाः) विद्वान् लोग (नः) हमारी (आयुः) अवस्था को (जीवसे) दीर्घकालपर्य्यन्त जीने के लिये (प्र, तिरन्तु) बढ़ावें ॥

भावा०—इस मंत्र में विद्वानों के सत्संग द्वारा आयुवृद्धि की प्रार्थना कीगई है कि हे परमपिता परमात्मा! आप ऐसी कृपा करें कि सदाचारी विद्वानों की कल्याणकारक शुभबुद्धि हमें प्राप्त हो अर्थात् हम लोग कर्मकाण्डी, अनुष्ठानी तथा परमात्मपरायण विद्वानों के अनुगामी हों, और उनसे सदा मैत्रीभाव से वर्तें जिससे वे प्रसन्न हो दीर्घजीवी होने का उपदेश करें, या यों कहो कि वे हमें ब्रह्मचर्य्य पालन करने की विधि बतलावें जिससे हम पूर्ण आयु वाले हों ॥

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियं जिन्वमवसे हूमहे वयम् ।
पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥२६॥

पदा०—(वयं) हम लोग (ईशानम्) ऐश्वर्य्य वाले (जगतस्तस्थुषस्पतिं) चर और अचर जगत् के पति (धियं, जिन्वम्) बुद्धि से प्रसन्न करने वाले परमात्मा की (अवसे) अपनी रक्षा के लिये (हूमहे) स्तुति करते हैं, (यथा) जैसे वह (पूषा) पुष्टिकर्ता (वेदसाम्) धनों की (वृधे) वृद्धि की लिये (असत्) हो, (रक्षिता) सामान्यतया रक्षक, और (पायुः) विशेषतया रक्षक (अदब्धः) कार्यों का साधक परमात्मा (स्वस्तये) कल्याण के लिये हो "वैसे ही हम स्तुति करते हैं" ॥

भावा०—हम लोग ऐश्वर्य्यसम्पन्न, चराचर जगत् के स्वामी तथा मेधाबुद्धि द्वारा प्राप्त होने योग्य परमात्मा की स्तुति करते हैं ताकि वह पुष्टिकारक पदार्थों से हमारी रक्षा करे, और सब कालों में रक्षक परमात्मा विशेषतया हमारे कार्यों को सिद्ध करते हुए सदा कल्याणकारी हों ॥

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥ २७ ॥

पदा०—(वृद्धश्रवाः) बहुत कीर्ति वाला (इन्द्रः) परमैश्वर्य्ययुक्त ईश्वर (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) कल्याण को (दधातु) स्थापन करे, और

(पूषा) पुष्टि करने वाला (विश्ववेदाः) सर्वज्ञाता ईश्वर (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) कल्याण को धारण करे (तार्क्ष्यः) तीक्ष्ण तेजस्वी (अरिष्टनेमिः) दुःखहर्ता ईश्वर (नः) हमारा (स्वस्ति) कल्याण करे, (बृहस्पतिः) बड़े २ पदार्थों का पति (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) कल्याण को धारण करे ॥

भावा०—अतुलकीर्तिवाला, परमैश्वर्य्यसम्पन्न, सर्व चराचर जगत् को पुष्ट करने वाला, सर्वज्ञाता, तेजस्वी, सब दुःखों को दूर करके सुख देने वाला और सब पदार्थों का स्वामी परमात्मा हमारे लिये कल्याणकारी हो ॥

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥ २८ ॥

यजु० २५।१४-१५।१८-१६।२१

पदा०—हे (यजत्राः) संग करने योग्य (देवाः) विद्वान् लोगो ! हम (कर्णेभिः) कानों से (भद्रम्) अनुकूल हो (शृणुयाम) सुनें (अक्षभिः) नेत्रों से (भद्रम्) अच्छी वस्तुओं को (पश्येम) देखें, (स्थिरैरङ्गैः) दृढ़ अंगों से (तुष्टुवांसः) आपकी स्तुति करने वाले हम लोग (तनूभिः) शरीरों से या भार्यादि के साथ (देवहितम्) विद्वानों के लिये कल्याणकारी (यद्, आयुः) जो आयु है उसको (व्यशेमहि) अच्छे प्रकार प्राप्त हों ॥

भावा०—हे सर्वरक्षक परमात्मन् ! आप ऐसी कृपा करें कि हम लोग विद्वानों का संग करते हुए प्रतिदिन भद्र ही सुनें, और भद्र ही देखें, अर्थात् कोई अनिष्ट श्रवण तथा दर्शन हमें न हो, हमलोग ब्रह्मचर्य्य का पालन करते हुए दृढ़ अंगों वाले हों, और पूर्ण आयु प्राप्त कर अपने अभीष्ट फलों को उपलब्ध करें ॥

अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये।
निहोता सत्सि बर्हिषि ॥ २९ ॥

पदा०—हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! (वीतये) कान्ति = तेजोविशेष के लिये (गृणानः) प्रशंसित हुए आप (हव्यदातये) देवताओं के लिये हव्य देने को (आयाहि) प्राप्त हूजिये (होता) सब पदार्थों के ग्रहण करने वाले आप (बर्हिषि) यज्ञादि शुभ कार्यों में स्मरणादि द्वारा हमारे हृदयों में (नि, सत्सि) स्थित हूजिये ॥

भावा०—हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! आप दिव्यज्योतिर्मय होने से सबके उपासनीय तथा देवताओं के पालन पोषण करने योग्य हो, आपही

सब पदार्थों के स्वामी और आप ही यज्ञादि शुभ कार्यों में पूजन करने योग्य हो, कृपाकरके आप हमारे शुभ कार्यों में सहायक हों ताकि हम सम्पूर्ण वैदिक कर्मों को निर्विघ्नतापूर्वक करते हुए आपको प्राप्त हों ॥

त्वमग्ने यज्ञानांहोता विश्वेषांहितः। देवेभिर्मानुषे जने॥ ३०॥

सा० छन्द० आ० प्रपा० १ म० १।२

पदा०—(अग्ने) हे पूजनीयेश्वर! (त्वं) तू (विश्वेषां, यज्ञानाम्) छोटे बड़े सब यज्ञों का (होता) उपदेष्टा है (देवेभिः) विद्वान् पुरुषों से (मानुषे, जने) विचारशील पुरुषों में भक्ति उत्पादन द्वारा तुम (हितः) स्थित किये जाते हो ॥

भावा०—सबके पूजनीय परमात्मन्! आप सब यज्ञों के उपदेष्टा होने से विद्वान् पुरुषों द्वारा सेवनीय तथा सत्कारार्ह हो, आपके भक्तजन वैदिक वाणियों द्वारा आपका कीर्तन करते हुए संसारी जनों में आपकी महिमा प्रकट करते हैं ॥

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः।
वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे ॥ ३१ ॥

अथर्व० का० १ वर्ग० १ अनु० १ प्रपा० १ मं० १

पदा०—(त्रिषप्ताः) तीन=रजस्, तमस्, सत्वगुण तथा सात—ग्रह, अथवा तीन-सात अर्थात् ५ महाभूत, ५ ज्ञानेन्द्रिय, ५ प्राण ५ कर्मेन्द्रिय, १ अन्तःकरण (ये) जो (विश्वा, रूपाणि) सब चराचरात्मक वस्तुओं को (बिभ्रतः) अभिमत फल देकर पोषण करते हुए (परि, यन्ति) यथोचित लौटपौट होते रहते हैं (तेषाम्) उनके सम्बन्धी (मे, तन्वः) मेरे शरीर में (बला) बलों को (अद्य) आज (वाचस्पतिः) वेदात्मकवाणी का पति परमेश्वर (दधातु) धारण करे ॥

भावा०—हे वेदवाणी के पति परमेश्वर ! ये ऊपर कथन किये हुए इक्कीस सब चराचर संसार का पोषण करते हुए अपने व्यापार में सदा प्रवृत्त रहकर शारीरक यात्रा में सहायक होते हैं, इसलिये आपसे प्रार्थना है कि कृपा करके आप हमारे शरीरों में बल प्रदान करें ताकि हम अपने कार्यों को विधिवत् करते हुए अंततः आपको प्राप्त हों ॥

इति स्वस्तिवाचनम्

अथ शान्ति प्रकरणम्

शन्न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शन्न इन्द्रावरुणा रातहव्या ।
शमिन्द्रासोमा सुविताय शंयोः शन्न इन्द्रापूषणा वाजसातौ ॥१॥

पदा०—(इन्द्राग्नी) विद्युत् और अग्नि (अवोभिः) रक्षणादि द्वारा (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारक (भवताम्) हों (रातहव्या) ग्रहणयोग्य वस्तु जिन्होंने दी हैं ऐसे (इन्द्रावरुणा) बिजली तथा जल (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारक हों (इन्द्रासोमा) विद्युत् और ओषधिगण (सुविताय) ऐश्वर्य्य के लिये और (शंयोः) शान्तिहेतुक तथा विषयहेतुक सुख के लिये (शम्) प्रसन्नतादायक हों (इन्द्रापूषणा) विद्युत् और वायु (नः) हमारे लिये (वाजसातौ) युद्ध में वा अन्नलाभ विषय में (शम्) कल्याणकारक हों ॥

भावा०—इस मंत्र में शान्ति की प्रार्थना कीगई है कि हे परमपिता परमात्मन् ! आपके दिये हुए पदार्थ हमें शान्तिदायक और सुखवर्द्धक हों अर्थात् विद्युत् अग्नि, जल, ओषधियों का समूह और वायु जिनके आश्रित हमारा जीवन निर्भर है ये सब हमें शान्ति और सुख के देने वाले हों ॥

शन्नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शन्नः पुरन्धि शमु सन्तु रायः ।
शन्नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शन्नो अर्य्यमा पुरुजातो अस्तु ॥२॥

पदा०—(नः) हमारे लिये (भगः) ऐश्वर्य्य (शम्) सुखदायक हो, और (नः) हमारे लिये (शंसः) प्रशंसा (शम्, उ) शान्ति के लिये ही (अस्तु) हो, हमारे लिये (पुरन्धि) बहुत बुद्धि (शम्) सुखकारक हो, (रायः) धन (शम्, उ) शान्ति के लिये ही (सन्तु) हों, (सुयमस्य) अच्छे नियम से युक्त (सत्यस्य) सत्य का (शंसः) कथन (नः) हमको (शम्) सुखकारक हो, (नः) हमारे लिये (पुरुजातः) बहुत पुरुषों में प्रसिद्ध (अर्यमा) न्यायाधीश (शम्) सुख देने वाला (अस्तु) हो ॥

भावा०—हे भगवन् ! आपका दिया हुआ ऐश्वर्य्य हमारे लिये सुख-दायक हो, आपकी कृपा से हमें प्राप्त हुई प्रतिष्ठा तथा सब पदार्थों को यथा-वत जानने का ज्ञान, अनेक प्रकार का धन और सत्यभाषण हमारे लिये

शान्तिदायक हो, हे न्यायकारी जगदीश्वर ! सब प्रजा पर शासन करने वाला न्यायाधीश आपकी कृपा से हमारे लिये सुखदायक हो ॥

शन्नो धाता शमुधर्त्ता नो अस्तु शन्न उरूची भवतु स्वधाभिः ।
शं रोदसी बृहती शंनो अद्रिः शंनो देवानां सुहवानि सन्तु॥३॥

पदा०—(नः) हमको (धाता) पोषक सब वस्तु (शम्) शान्तिकारक हों (धर्ता) धारक सब वस्तु (शम्, उ) शान्ति के लिये ही (नः) हमारे लिये (अस्तु) हों (नः) हमारे लिये हो (ऊरूची) पृथिवी (स्वधाभिः) अन्नादि पदार्थों से (शम्) कल्याण कारक (भवतु) हो (बृहती) बड़ी (रोदसी) अन्तरिक्ष सहित पृथिवी वा प्रकाशसहित अन्तरिक्ष (शम्) शान्ति देने वाली हो (अद्रिः) मेघ (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारक हों, और (नः) हमारे लिये (देवानाम्) विद्वानों के (सुहवानि) शोभन आह्वान (शम्) सुखकारक (सन्तु) हों ॥

भावा०—हे परमात्मन ! हमारे पालक, पोषक तथा धारक पदार्थ हमें शान्तिदायक हों, अन्नादि पदार्थों को उत्पन्न करनेवाली यह पृथिवी, अन्तरिक्ष और प्रकाशयुक्त द्युलोक हमारे लिये सुखदायक हों, सब ओषधियों को पुष्ट करनेवाली वृष्टि हमारे लिये शान्ति देने वाली हो, और हमें सदुपदेश कर वैदिकमर्यादा पर स्थित रखनेवाले विद्वानों का हमारे यहां सदा आगमन होता रहे जिससे हम सुख ही सुख अनुभव करें ॥

शन्नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शन्नो मित्रावरुणावश्विना शम् ।
शन्नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शन्न इषिरो अभिवातु वातः॥४॥

पदा०—(ज्योतिरनीकः) प्रकाश ही है अनीक=मुख वा सेना की नाईं जिसका ऐसा (अग्निः) अग्नि (नः) हमको (शम्) सुखकारक (अस्तु) हो (मित्रावरुणौ) प्राण तथा उदान वायु (नः) हमको (शम्) सुखकारक हों (अश्विना) उपदेशक और अध्यापक (शम्) सुख पहुंचाने वाले हों (सुकृतानि) धर्माचरण (नः) हमको (शम्) सुख देने वाले (सन्तु) हों (नः) हमारे लिये (इषिरः) गमनशील (वातः) वायु (शम्) सुख देता हुआ (अभिवातु) बहे ॥

भावा०—हे सुखस्वरूप तथा हमको सुख देने वाले जगदीश्वर ! यह सेना की नाईं विस्तृत ज्योति वाली अग्नि यज्ञों द्वारा हमें सुखदायक हो, प्राण तथा उदानादि वायुओं का हम पर कभी कोप न हो अर्थात् वे हमारे सदा

अनुकूल हों, हमारे उपदेशक तथा अध्यापक अपने सदुपदेश द्वारा हमें सुख पहुंचावें, हम सदा धर्मात्माओं के धर्माचरण ग्रहण करते हुए धार्मिक बनें, और बहता हुआ वायु हमारे लिये शान्तिदायक हो ॥

शन्नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु । शन्न ओषधीर्वनिनो भवन्तु शंनो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः ॥५॥

पदा०—(द्यावापृथिवी) विद्युत् और भूमि (पूर्वहूतौ) पूर्व पुरुषों की प्रशंसा जिसमें हो ऐसी क्रियायें (नः) हमारे लिये (शम्) शान्तिदायक हों (अन्तरिक्षं) अन्तरिक्ष लोक (दृशये) ज्ञानसम्प्राप्ति के लिये (नः) हमारे लिये (शम्) शान्तिदायक (अस्तु) हो (ओषधीः) ओषधियां और (वनिनः) वृक्ष (शम्) सुखकारक (नः) हमारे लिये (भवन्तु) हों (रजसस्पतिः) रजोलोक का पति (जिष्णुः) जयशील महापुरुष (नः) हमारे लिये (शम्) सुख देनेवाला (अस्तु) हो ॥

भावा०—द्युलोक, पृथिवीलोक तथा अन्तरिक्षलोक, ज्ञानसम्पत्ति के लिये हमें सुखदायक हों अर्थात् जैसे हमारे पूर्व पुरुषा इन लोकों का ज्ञान सम्पादन करते हुए ऐश्वर्य्य सम्पन्न हो सुख को प्राप्त हुए, इसी प्रकार हम भी इनका ज्ञान उपलब्ध करते हुए सुखी हों, हम प्रत्येक ओषधि तथा वृक्षों के गुणज्ञाता हों ताकि वह हमारे लिये शान्ति दें, और हमारे रज वीर्य्य को पुष्ट करते हुए हमें सुखकारक हों ॥

शन्न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिर्वरुणः सुशंसः । शन्नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः शं नस्त्वष्टाग्नाभिरिह शृणोतु ॥६॥

पदा०—(देवः) दिव्यगुणयुक्त (इन्द्रः) सूर्य्य (वसुभिः) धनादि पदार्थों के साथ (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारक (अस्तु) हो (आदित्येभिः) संवत्सरीय मासों के साथ (सुशंसः) शोभन प्रशंसा वाला (वरुणः) जलसमुदाय (शम्) सुखकारक हो (जलाषः) शान्तिस्वरूप (रुद्रः) परमात्मा (रुद्रेभिः) दुष्टों को दण्ड देने वाले अपने गुणों के साथ (नः) हमारे लिये (शम्) सुख देने वाला हो (त्वष्टा) विवेचक विद्वान् (ग्नाभिः) वाणियों से "ग्नेति वाङ् नाम निघण्टौ० १ । ११" (इह) इस संसार में (शम्) सुखमय उपदेशों को (नः) हमारे लिये (शृणोतु) सुनावें ॥

भावा०—दिव्यगुणयुक्त, सबका प्रकाशक, अन्नादि धनों का उत्पन्न करने वाला सूर्य्य और अन्नादि पदार्थ हमारे लिये सुखदायक हों, जल समुदाय

हमारे लिये सुखकारी हो, संवत्सर, मास, दिन शान्तिकारक हों, दुष्टों को दण्ड देने और श्रेष्ठों का पालन करने वाला परमात्मा सब ओर से हमारी रक्षा करे, और प्रत्येक पदार्थ की विवेचना करने वाले विद्वान् अपनी मनोहर बाणियों से हमको सदुपदेश श्रवण कराते हुए हमारी आत्मा को शान्ति प्रदान करें ॥

शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शंनो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः ।
शंनः स्वरूणां मितयो भवन्तु शंनः प्रस्वः शम्वस्तु वेदिः ॥७॥

पदा०—(नः) हमारे लिये (सोमः) चन्द्रमा (शम्) सुखकारक (भवतु) हो (नः) हमारे लिये (ब्रह्म) अन्नादि रूप तत्त्व (शम्) शान्तिदायक हो (ग्रावाणः) शुभ कार्यों के साधनभूत प्रस्तर=पत्थर (नः) हमको (शम्) सुख देने वाले हों (यज्ञाः) सब प्रकार के यज्ञ (शम्, उ) शान्ति ही के लिये (सन्तु) हों (स्वरूणां) यज्ञस्तम्भों के (मितयः) परिमाण (नः) हमको (शम्) सुखदायक (भवन्तु) हों (नः) हमको (प्रस्वः) ओषधियां (शम्) सुख देने वाली हों (वेदिः) यज्ञ की वेदि=कुण्डादिक (शम्, उ) शान्ति ही के लिये (अस्तु) हों ॥

भावा०—सौम्यगुणसम्पन्न तथा अन्नादि पदार्थों के उत्पन्न करने और उनमें रसों का संचार करने वाला चन्द्रमा हमारे लिये सुखकारक हो, हे परमात्मन ! हमारे कार्यों के साधक पत्थर आदि काठिन्यप्रधान पदार्थ हमें सुखदायक हों और सर्वाङ्गों सहित यज्ञ हमारे लिये शान्तिदायक हो ॥

शंनः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शंनश्चतस्रः प्रदिशो भवन्तु ।
शंनः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शंनः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ॥८॥

पदा०—(उरुचक्षाः) बहुत तेज हैं जिसके ऐसा (सूर्यः) सूर्य्य (नः) हमारे लिये (शम्) सुखपूर्वक (उद्, एतु) उदय को प्राप्त हो (चतस्रः) चारों (प्रदिशः) पूर्वादि बड़ी दिशायें वा ऐशानी आदि प्रदिशायें (नः) हमारे लिये (शम्) सुख करने वाली (भवन्तु) हों (पर्वताः) पर्वत (ध्रुवयः) स्थिर और (शम्) सुखदायक (नः) हमारे लिये (भवन्तु) हों, और (नः) हमारे लिये (सिन्धवः) नदियां वा समुद्र (शम्) शान्तिदायक हों (आपः) जलमात्र वा प्राण (शम्, उ) शान्ति के लिये ही (सन्तु) हों ॥

भावा०—हे हमारे रक्षक परमात्मन ! इस तेजोपुंज सूर्य्य का उदय होना हमारे लिये शान्तिदायक हो, दिशा, उपदिशा, स्थिर पर्वत, समुद्र तथा नदियां अर्थात् जलमात्र हमारे लिये सुखदायक तथा शान्ति देने वाले हों ॥

शन्नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शंनो भवन्तु मरुतः स्वर्काः।
शन्नो विष्णुः शमु पूषानो अस्तु शंनो भवित्रं शम्वस्तु वायुः॥९॥

पदा०—(व्रतेभिः) सत्कर्मों के साथ (अदितिः) विदुषी मातायें (नः) हमारे लिये (शम्) शान्तिदायक (भवन्तु) हों (स्वर्काः) शोभन विचार वाले (मरुतः) मितभाषी विद्वान् लोग (नः) हमारे लिये (शम्) शान्ति देने वाले (भवन्तु) हों (विष्णुः) व्यापक ईश्वर (नः) हमको (शम्) शान्त्याधायक हो (पूषा) पुष्टिकारक ब्रह्मचर्यादि व्यवहार (नः) हमको (शम्, उ) शान्ति के लिये ही (अस्तु) हो (भवित्रम्) अन्तरिक्ष वा जल अथवा भवितव्य (नः) हमको (शम्) सुखकारक हो (वायुः) पवन (शम्, उ) शान्ति ही के लिये (अस्तु) हो ॥

भावा०—हे सम्पूर्ण संसार को शान्ति देने वाले भगवन्! सत्कर्मों वाली हमारी विदुषी मातायें तथा विचारशील विद्वान् पुरुष हमारे लिये सुख उत्पन्न करने वाले हों, हमारे आत्मा तथा शरीर को पुष्ट करने वाला ब्रह्मचर्य्य हमको शान्तिदायक हो और अन्तरिक्षस्थ जल तथा पवन सदा ही हमारे स्वास्थ्य के रक्षक हों ताकि हम अपना अभीष्टफल प्राप्त कर सकें ॥

शंनो देवः सविता त्रायमाणः शंनो भवन्तूषसो विभातीः।
शंनः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शंनः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शम्भुः॥१०॥

पदा०—(सविता) सर्वोत्पादक (देवः) परमेश्वर (त्रायमाणः) रक्षा करता हुआ (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारक हो (उषसः) प्रभात वेलायें (विभातीः) विशेष दीप्ति वाली (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारक (भवन्तु) हों (पर्जन्यः) मेघ (नः) हमको और (प्रजाभ्यः) संसार के लिये (शम्, भवतु) कल्याणकारी हों (क्षेत्रस्य) जगत्‌रूप क्षेत्र का (पतिः) स्वामी (शम्भुः) सब को सुख देने वाला (नः) हमारे लिये (शम्) शान्तिकारी (अस्तु) हो ॥

भावा०—सब को उत्पन्न करने वाला, सबका स्वामी तथा सबको सुख देने वाला प्रभु! हमें सुख देता हुआ हमारे लिये शान्तिकारक हो, देदीप्यमान प्रभात वेलायें हमारे लिये सुखकारक हों और मेघमालायें सम्पूर्ण संसार का कल्याण करती हुई हमारे लिये शान्तिदायक हों ॥

शंनो देवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वती सह धीभिरस्तु।

शमभिषाचः शमुरातिषाचःशंनो दिव्याःपार्थिवा शन्नो अप्याः॥११

पदा०—(देवाः) दिव्यगुणयुक्त (विश्वदेवाः) समस्त विद्वान् (नः) हमारे लिये (शम्, भवन्तु) सुख देने वाले हों (सरस्वती) विद्या, सुशिक्षा-युक्त वाणी (धीभिः) उत्तम बुद्धियों के (सह) साथ (शम्, अस्तु) सुखकारिणी हो (अभिषाचः) यज्ञ के सेवक वा आत्मदर्शी (शम्) शान्तिदायक हों (रातिषाचः) विद्याधनादि के दान का सेवन करने वाले (शम्, उ) शान्ति ही के लिये हों (दिव्याः) सुन्दर (पार्थिवाः) पृथिवी के पदार्थ (नः) हमारे लिये (शम्) सुखद हों (अप्याः) जल में पैदा होने वाले (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारी हों ॥

भावा०—हे सर्वनियन्ता जगदीश्वर! वेदविद्या से सुभूषित विद्वान् पुरुष हमारे लिये उत्तम उपदेशों द्वारा सुखप्रद हों, सदाचार सम्पन्न तथा बुद्धि सम्पत्ति वाले पुरुषों को प्राप्त हुई वेदवाणी हमें शान्तिदायक हो, आत्मदर्शी याज्ञिक महात्मा हममें शान्ति का संचार करें, दान के महत्व को जान कर अनुष्ठान करने वाले पुरुष शान्तिदायक हों, और पृथिवीस्थ तथा जलीय पदार्थ हमारे लिये सुख देने वाले हों ॥

शंनः सत्यस्य पतयो भवन्तु शंनो अर्वन्तः शमु सन्तु गावः ।
शंन ऋभवःसुकृतः सुहस्ताःशंनो भवन्तु पितरो हवेषु ॥१२॥

पदा०—(सत्यस्य, पतयः) सत्यभाषणादि व्यवहार के पालक (नः) हमारे लिये (शम्, भवन्तु) सुखकारी हों (अर्वन्तः) उत्तम घोड़े (नः) हमको (शम्) सुखद हों, (गावः) गौयें (शम्, उ) शान्ति ही के लिये (सन्तु) हों (ऋभवः) श्रेष्ठबुद्धिवाले (सुकृतः) धर्मात्मा (सुहस्ताः) अच्छे कामों में हाथ देने वाले (नः) हमारे लिये (शम्) सुखद हों (हवेषु) हवनादि सत्कर्मों में (पितरः) माता पिता आदि (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारक (भवन्तु) हों ॥

भावा०—हे परमात्मन्! आपकी कृपा से सत्यवक्ता पुरुष सत्य का उपदेश करते हुए हमारे लिये शान्तिदायक हों, घोड़े तथा दुग्धस्रवित गौयें हमें सुखकारी हों, वेदविहित कर्म करने वाले धार्मिक पुरुष और हमारे माता, पिता तथा आचार्यादि वृद्ध पुरुष हमारे यज्ञादि सत्कर्मों में सम्मिलित होकर हमें सुखप्रद उपदेश करें, जिससे हमारे हृदय में शान्ति विराजमान हो अर्थात् उनका आगमन हमारे लिये शान्तिदायक हो ॥

शंनो अज एकपाद्देवो अस्तु शंनोऽहिर्बुध्न्यः शंसमुद्रः ।
शंनो अपांनपात्पेरुरस्तु शंनः पृश्निर्भवतु देवगोपाः ॥१३॥

ऋग्० मं० ७ सू० ३५ मं० १-१३

पदा०—(एकपात्) जगत्‌रूप एक पाद वाला अर्थात् जिसके एक अंश में सब जगत है वह अनन्तस्वरूप (अजः) अजन्मा (देवः) ईश्वर (नः) हमारे (शम्) कल्याण के लिये (अस्तु) हो (बुध्न्यः, अहिः) अन्तरिक्ष में पैदा होने वाले मेघ (नः) हमारे (शम्) कल्याण के लिये हों (समुद्रः) सागर (शम्) सुखकारी हो (अपाम्) जलों की (नपात्) नौका (नः) हमको (शम्, पेरु) सुखपूर्वक पार लगाने वाली (अस्तु) हो (देवगोपाः) देव रक्षक हैं जिसमें ऐसा (पृश्निः) अन्तरिक्षस्थल (नः) हमको (शम्, भवतु) सुखकारक हो ॥

भावा०—यह सम्पूर्ण जगत् जिसके एक पाद=भाग में स्थित है और तीन पाद अमृत हैं, वह अनन्तस्वरूप तथा अजन्मा ईश्वर हमारा कल्याण करे, अन्तरिक्ष में उत्पन्न होने वाला मेघ, महान् समुद्र, जलों से पार करने वाली नौका और यह अन्तरिक्षस्थल, हे भगवन् ! आपकी कृपा से सुखदायक तथा शान्तिप्रद हों ॥

इन्द्रो विश्वस्य राजति शंनो अस्तु द्विपदेशं चतुष्पदे ॥१४॥

पदा०—हे जगदीश्वर ! जो आप (इन्द्रः) बिजली के तुल्य (विश्वस्य) संसार के बीच (राजति) प्रकाशमान हैं, आपकी कृपा से (नः) हमारे (द्विपदे) पुत्रादि के लिये (शम्) सुख (अस्तु) होवे, और हमारे (चतुष्पदे) गौ आदि चार पाओं वाले पशुओं के लिये (शम्) सुख हो ॥

भावा०—हे विद्युत् समान सारे ब्रह्माण्ड में प्रकाशमान परमात्मन् ! आपकी कृपा से पुत्र पौत्रादि हमारा परिवार सुखपूर्वक हो अर्थात् वह सदा शान्ति द्वारा ही अपना जीवन व्यतीत करे और हमारी गौ आदि धन सदा सुखपूर्वक रहे, ऐसी कृपा करो ॥

शंनो वातः पवता ॅ शं नस्तपतु सूर्य्यः ।
शंनः कनिक्रदद्देवः पर्जन्यो अभिवर्षतु ॥ १५ ॥

पदा०—हे परमेश्वर ! (वातः) पवन (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारी (पवताम्) चले (सूर्य्यः) सूर्य्य (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारी (तपतु) तपे (कनिक्रदत्) अत्यन्त शब्द करता हुआ (देवः)

उत्तम गुणयुक्त विद्युत्रूप अग्नि (नः) हमारे लिये (शम्) कल्याणकारी हो. और (पर्जन्यः) मेघ हमारे लिये (अभि, वर्षतु) भलेप्रकार वर्षा करें ॥

भावा०—हे दीनों पर दया करने वाले जगदीश्वर! आप ऐसी कृपा करें कि पवन हमारे लिये शान्तिदायक चले, तपता हुआ सूर्य्य सुख दे, अग्नि हमारे लिये कल्याणकारी हो और भलेप्रकार वर्षा करते हुए मेघ हमें शान्ति दायक हों ॥

अहानि शं भवन्तु नः शꣳ रात्रीः प्रतिधीयताम्। शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या। शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ शमिन्द्रा सोमा सुविताय शंयोः ॥१६॥

पदा:—हे परमेश्वर! (अवोभिः) रक्षा आदि के साथ (शंयोः) सुख की (सुविताय) प्रेरणा के लिये (नः) हमारे अर्थ (अहानि) दिन (शम्) सुखकारी (भवन्तु) हों (रात्रीः) रात्रि (शम्) कल्याण के (प्रति) प्रति (धीयताम्) हमको धारण करें (इन्द्राग्नी) बिजली और प्रत्यक्ष अग्नि (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारी (भवताम्) होवें, (रातहव्या) ग्रहण करने योग्य सुख जिनसे प्राप्त हुआ वे (इन्द्रावरुणा) विद्युत् और जल (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारी हों, (वाजसातौ) अन्नों के सेवन हेतु संग्राम में (इन्द्रापूषणा) विद्युत् और पृथिवी (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारी हों, (इन्द्रा, सोमा) बिजली और औषधियां (शम्) सुखकारिणी हों ॥

भावा०—हे हमारी रक्षा करने वाले पिता परमात्मन्! आप ऐसी कृपा करें कि यह दिन और रात्रि हमारे लिये सुखदायक हों, अर्थात् दिन और रातों में भी हम आप ही की आज्ञा का पालन करते हुए विचरें, दुःख के देने वाला कोई पाप कर्म हमसे न हो, विद्युत्, भौतिकाग्नि और पदार्थविद्या द्वारा सिद्ध किया हुआ विद्युत्, तथा जल, अन्नों को सेवन करने योग्य बनाने वाला विद्युत् तथा पृथिवी और हमारे जीवन का आधार बिजली तथा औषधियां हमारे लिये सुख तथा शान्तिदायक हों ॥

शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये।
शंयोरभिस्रवन्तु नः ॥ १७ ॥

पदा०—हे जगदीश्वर! (अभिष्टये) इष्टसुख की सिद्धि के लिये (पीतये) पीने के अर्थ (देवी) दिव्य=उत्तम (आपः) जल (नः) हमको (शम्)

सुखकारी (भवन्तु) हों और वे (नः) हमारे लिये (शंयोः) सुख की वृष्टि (अभिस्रवन्तु) सब ओर से करें ॥

भावा०—हे दिव्यगुणसम्पन्न परमात्मन् ! आप हमारे लिये सुखकारी हों, और हमको इष्टसुख प्राप्त करायें, हे सर्वव्यापक जगदीश्वर ! आप अपनी कृपा से हमें पूर्णानन्द का भागी बनायें, और हम सब ओर से शान्ति ही देखें, हमारा चित्त कभी अशान्ति न हो ॥

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वꣳ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सामा शान्तिरेधि ॥ १८ ॥

पदा०—हे परमेश्वर ! (द्यौः) प्रकाशयुक्तसूर्यादि (अन्तरिक्षम्) सूर्य्य और पृथिवी के बीच का लोक (पृथिवी) भूमि (आपः) जल (ओषधयः) सोमलता आदि औषधियां, वनस्पति = वट आदि वृक्ष (विश्वेदेवाः) सब विद्वान् लोग (ब्रह्म) वेद (सर्वम्) सब वस्तु (शान्तिः) शान्ति = सुखकारी, निरुपद्रव हों, "शान्ति" शब्द का प्रत्येक शब्द के साथ मंत्र में अन्वय है (शान्तिरेव, शान्तिः) स्वयं शान्ति भी सुखदायिनी हो, और (सा) वह (शान्तिः) शान्ति (मा) मुझको (एधि) प्राप्त हो ॥

भावा०—हे शान्तिस्वरूप परमात्मन् ! प्रकाशमान सूर्य्य, चन्द्रमादि अथवा द्युलोक, अन्तरिक्षलोक और पृथिवीलोक, जल, औषधियां, वनस्पति, सब विद्वान् पुरुष, ब्रह्म = प्रकृति और हमसे सम्बन्ध रखने वाले सम्पूर्ण पदार्थ हमारे लिये सुखदायक हों, वह शान्ति भी शान्तिदायक हो, और हे भगवन् ! वह शान्ति मुझे प्राप्त हो ॥

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥१९॥

यजु० ३६ । २४

पदा०—हे सूर्य्यवत् प्रकाशक परमेश्वर ! आप (देवहितम्) विद्वानों के हितकारी (शुक्रम्) शुद्ध (चक्षुः) नेत्रतुल्य सब के दिखाने वाले (पुरस्तात्) अनादि काल से (उद्, चरत्) अच्छी तरह सब के ज्ञाता हैं, (तत्) उन आपको हम (शतं, शरदः) सौ वर्ष तक (पश्येम) ज्ञान द्वारा देखें, और आपकी कृपा से (शतं, शरदः) सौ वर्ष तक (जीवेम) हम जीवें, (शतं, शरदः) सौ वर्ष तक

(शृणुयाम) सच्छास्त्रों को सुनें, (शतं, शरदः) सौ वर्ष पर्यन्त (प्रब्रवाम) पढ़ावें वा उपदेश करें,और (शतं,शरदः) सौ वर्ष तक (अदीनाः) दीनता रहित (स्याम) हों, (च) और (शतात्, शरदः) सौ वर्ष से (भूयः) अधिक भी देखें, जीवें, सुनें और अदीन रहें ॥

भावा०—हे हमारे द्रष्टा परमेश्वर! आप विद्वानों के हितकारी, शुद्ध स्वरूप, उत्कृष्टता से सर्वत्र परिपूर्ण और अनादि काल से आप हमारे सब कर्मों के ज्ञाता हैं, आप ऐसी कृपा करें कि हम सौ वर्ष तक आपको ज्ञानदृष्टि से मनन करते रहें, आपकी आज्ञा का पालन करते हुए सौ वर्ष तक जीवें, सौ वर्ष तक आपका गुण कीर्तन सुनें, सौ वर्ष पर्य्यन्त वेदों के सदुपदेश सुनें और अनुष्ठान करें, हे भगवन्! ऐसी कृपा करो कि हम सौ वर्ष तक अदीन हों, और यदि सौ वर्ष से अधिक भी जीवें तो इसी प्रकार देखें, सुनें और अदीन रहें ॥

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति । दूरं गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ २० ॥

पदा०—हे जगदीश्वर! आपकी कृपा से (यत्) जो (दैवम्) दिव्य गुणों से युक्त (दूरं, गमम्) दूर दूर जाने वाला वा पदार्थों को ग्रहण करने वाला, (ज्योतिषाम्) विषयों के प्रकाशक चक्षुरादि इन्द्रियों का (ज्योतिः) प्रकाश करने वाला (एकम्) अकेला (जाग्रतः) जागने वाले के (दूरम्) दूर २(उत, एति) अधिकतया भागता है (उ) और (तत्) वह (सुप्तस्य) सोते हुए को (तथा, एव) उसी प्रकार (एति) प्राप्त होता है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मन (शिवसंकल्पम्) अच्छे अच्छे विचार वाला (अस्तु) हो ॥

भावा०—हे हमारे मन तथा इन्द्रियों के स्वामी परमात्मन्! हमारा चंचल मन दूर २ जाकर पदार्थों को ग्रहण करने वाला, चक्षुरादि इन्द्रियों का प्रकाशक जो संयम करते हुए भी दूर २ भागता और असंयमी पुरुषों को भी उसी प्रकार प्राप्त होता है, वह मेरा मन आपकी कृपा से शुभ संकल्पों वाला हो अर्थात् उसमें कोई पापमय विकार उत्पन्न न हो ॥

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः । यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥२१॥

पदा०—हे जगत्पते ! जिस मन से (अपसः) सत्कर्मनिष्ठ (मनीषिणः) मन को दमन करने वाले (धीराः) ध्यान करने वाले बुद्धिमान् लोग (यज्ञे) अग्निहोत्रादि धार्मिक कार्यों में और (विदथेषु) वैज्ञानिक तथा युद्धादि व्यव-

हारों में (कर्माणि) इष्टकर्मों को (कृण्वन्ति) करते और (यत्) जो (अपूर्वम्) अद्भुत (प्रजानां) प्राणिमात्र के (अन्तः) भीतर (यक्षम्) मिला हुआ है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मन (शिवसंकल्पम्) श्रेष्ठसंकल्पवाला (अस्तु) हो ॥

भावा०—हे सर्वद्रष्टा परमेश्वर ! मन को दमन करते हुए ध्यान करने वाले सत्कर्मी पुरुष जिस मन से यज्ञादि इष्टकर्म करके प्राणी मात्र को सुख पहुंचाते और जिससे वैज्ञानिक लोग कलाकौशल द्वारा अनेक व्यवहारों में प्रवृत्त होते हैं, वह हमारा विचित्र मन जो प्राणीमात्र के भीतर रमा हुआ है उत्तम संकल्प वाला हो ॥

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु । यस्मान्न ऋते किंचन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥२२॥

पदा०—हे प्रभो ! (यत्) जो (प्रज्ञानम्) बुद्धि का उत्पादक (उत) और (चेतः) स्मृति का साधन (धृतिः) धैर्य्यस्वरूप (च) और (प्रजासु) मनुष्यों के (अन्तः) भीतर (अमृतं) नाशरहित (ज्योतिः) प्रकाशस्वरूप है (यस्मात्) जिसके (ऋते) बिना (किम्, चन) कोई भी (कर्म) काम (न, क्रियते) नहीं किया जाता (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मन (शिवसंकल्पम्) शुद्ध विचार वाला (अस्तु) हो ॥

भावा०—हे अन्तर्यामी परमात्मन् ! आप ऐसी कृपा करें कि हमारा मन जो ज्ञान को सदा स्फूर्ति देने वाला, स्मृतिरूप ज्ञान का उत्पादक, धीरता का साधक और जो हमारे भीतर नित्य प्रकाशमान है जिसकी प्रेरणा के बिना मनुष्य किसी काम में प्रवृत्त नहीं होसकता, वह मेरा मन पवित्र भावों वाला हो ॥

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम् । येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥२३॥

पदा०—हे सर्वेश्वर ! (येन, अमृतेन) नाशरहित परमात्मा से मिले हुए जिस मन से (भूतं, भुवनं, भविष्यत्, सर्वं, मिदं, परिगृहीतम्) भूत, वर्तमान, भविष्यत्, यह सब जाना जाता है और (येन) जिससे (सप्तहोता) सात होता वाला (यज्ञः) अग्निष्टोमादि यज्ञ "अग्निष्टोम में सात होता बैठते हैं" (तायते) विस्तृत किया जाता है (तत्) वह मेरा (मनः) मन (शिवसंकल्पम्) मुक्ति आदि शुभ पदार्थों के विचार वाला (अस्तु) हो ॥

भावा०—हे परमात्मन्! आपकी कृपा से यह नाशरहित=अविनाशी मन जो तीनो कालों का ज्ञापक अर्थात् भूत, वर्त्तमान तथा भविष्यत् का जनाने वाला और सात होताओं वाले अग्निष्टोमादि विस्तृत यज्ञों तथा अन्य बड़े २ शुभ कार्यों का चिन्तन करने वाला है, वह मेरा मन सदा उत्तम विचारों में ही प्रवृत्त रहे जिससे मनुष्यजन्म के फलचतुष्टय की प्राप्ति हो॥

यस्मिन्नृचः सामयजूꣳषि यस्मिन्प्रतिष्ठिता रथनाभा विवाराः।
यस्मिꣳश्चित्तꣳसर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥२४॥

पदा०—हे अखिलोत्पादक! (यस्मिन्) जिस शुद्ध मन में (ऋचा, साम) ऋग्वेद और साम वेद तथा (यस्मिन्) जिसमे (यजूंषि) यजुर्वेद और "अथर्ववेद भी" (रथनाभाविवाराः) रथ की नाभि=पहिये के बीच के काष्ठ में अरा जैसे (प्रतिष्ठिताः) स्थित हैं और (यस्मिन्) जिसमें (प्रजानाम्) प्राणियों का (सर्वम्) समग्र (चित्तम्) ज्ञान (ओतम्) सूत में मणियों के समान सम्बद्ध है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मन (शिवसंकल्पम्) वेदादि सत्यशास्त्रों के प्रचाररूप संकल्प वाला (अस्तु) हो॥

भावा०—हे ज्ञानदाता परमात्मन्! आप ऐसी कृपा करें कि हमारा वह पवित्र मन जिसमें ऋग्० यजु० साम तथा अथर्व० चारो वेद रथ की नाभि में अरा के समान स्थित हैं और जिसमें प्रजाओं का सम्पूर्ण ज्ञान सूत में पुरोये हुए मणिकाओं के समान ओत प्रोत हारहा है, वह मेरा मन शुभसंकल्प वाला अर्थात् वैदिकमर्यादानुसार चलने वाला हो॥

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥२५॥

यजु० ३४। १—६

पदा०—(यत्) जो मन (मनुष्यान्) मनुष्यों को (सुषारथिः, अश्वानिव) अच्छा सारथि घोड़ों को जैसे (नेनीयते) अतिशय करके "इधर उधर" ले जाता है, और जो मन, अच्छा सारथि (अभी, शुभिः) रश्मियों से (वाजिन, इव) वेग वाले घोड़ों को जैसे "यमयतीतिशेषः" मनुष्यों को नियम में रखता है, और (यत्) जो (हृत, प्रतिष्ठं) हृदय में स्थित है (अजिरम्) जरा रहित है (जविष्ठम्) अतिशय गमनशील है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मन (शिवसंकल्पम्) शुद्ध संकल्प वाला (अस्तु) हो॥

भावा०—हे भगवन्! जैसे उत्तम सारथि बलवान् घोड़ों को निग्रह करता हुआ अपने पथ में स्थिर रखता है अर्थात् वेगवान् घोड़ों को रासों

द्वारा स्वाधीन रखता हुआ इधर उधर विचलित नहीं होने देता, इसी प्रकार मन मनुष्यों को नियम में रखता है अर्थात् इन्द्रियरूप रासों को नियम में रखता हुआ मनुष्य को शुभमार्ग पर चलाता है, जो हृदय में स्थित, जरावस्था से रहित और जो अतिशय गमनशील है, वह मेरा मन वैदिकभावों में स्थिर शुभ संकल्प वाला हो ॥

१ २ ३ २ ३ १ १ २ ३ १ २ ३ १ २ १ २ ३ १ २

स नः पवस्व शङ्गवे शंजनाय शमर्वते। शꣳ राजन्नोषधीभ्यः ॥२६॥

साम० उत्तरार्चिके० प्रपा० १ मं० ३

पदा०—(राजन्) हे सर्वत्र प्रकाशमान परमात्मन्! (सः) प्रसिद्ध आप (नः) हमारे (गवे) गौआदि दूध देने वाले पशुओं के लिये (शम्) सुखकारक हों (जनाय) मनुष्यमात्र के लिये (शम्) शान्ति देने वाले हों (अर्वते) घोड़े आदि सवारी के काम में आने वाले पशुओं के लिये (शम्) सुखकारक हों (ओषधीभ्यः) गेहूं आदि औषधियों के लिये हमें (शम्,पवस्व) शान्ति दीजिये ॥

भावा०—हे सर्वव्यापक सर्वेश्वर परमात्मन्! आप हमारे दूध देने वाले गौ आदि पशुओं तथा घोड़े आदि वाहनों के लिये सुखकारक हों अर्थात् हमारे सुख के साधन उक्त पशुओं की वृद्धि करते हुए हमें आनन्दित करें, गेहूं आदि हमारे खाद्य पदार्थ अधिकता से उत्पन्न हों और शुद्ध और नीरोग रखने वाले हों, हे भगवन्! आप मनुष्यमात्र को शान्ति प्रदान करें जिससे हम आपके दिये हुए वैदिकज्ञान का सदा अनुष्ठान करते हुए अपने जीवन को उच्च बनावें ॥

अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे।
अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु ॥२७॥

पदा०—हे भगवन! (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष लोक (नः) हमारे लिये (अभयम्) निर्भयता को (करति) करे (उभे, इमे) ये दोनों (द्यावापृथिवी) विद्युत् और पृथिवी (अभयम्) निर्भयता करें (पश्चात्) पीछे से (अभयम्) भय न हो (पुरस्तात्) आगे से (अभयम्) भय न हो (उत्तरात्, अधरात्) ऊपर और नीचे से (नः) हमको (अभयम्, अस्तु) भय न हो ॥

भावा०—हे अभयप्रद परमात्मन्! आप ऐसी कृपा करें कि द्युलोक, अन्तरिक्षलोक तथा पृथ्वीलोक हमारे लिये भयरहित हों, और आगे पीछे तथा ऊपर, नीचे से हम निर्भय होकर आपके ज्ञान का अनुसन्धान करते हुए शान्तिपूर्वक जीवन व्यतीत करें ॥

अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं परोक्षात् ।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ॥२८॥

अथर्व० कां० १९ सू० १५ मं० ५-६

पदा०—हे जगत्पते ! हमें (मित्रात्) मित्र से (अभयम्) भय न हो (अमित्रात्) शत्रु से (अभयम्) भय न हो (ज्ञातात्) जाने हुए पदार्थ से (अभयम्) भय न हो (परोक्षात्) न जाने हुए पदार्थ से (अभयम्) भय न हो (नः) हमें (नक्तम्) रात्रि में (अभयम्) भय न हो (दिवा) दिन में (अभयम्) भय न हो (सर्वाः) सब (आशाः) दिशायें (मम, मित्रं) मेरी मित्र (भवन्तु) हों ॥

भावा०—हे सर्वनियन्ता जगत्पते परमात्मन् ! आप ऐसी कृपा करें कि मित्र, उदासीन तथा शत्रु से हमें कभी भय न हो, ज्ञात तथा अज्ञात पदार्थ से भयरहित हों, दिन और रात्रि हमें अभयप्रद हों और हे भगवन् ! आप की कृपा से दशों दिशायें हमें अभय देने वाली और शान्तिदायक हों ॥

इति शान्तिप्रकरणम्

पुरुषसूक्त

सं०—इस सूक्त में उस अभयप्रद, मनुष्यमात्र के कल्याणकारक, जीवन-दाता तथा पदार्थमात्र को नियम में रखने वाले "परमात्मा" का वर्णन किया गया है, जिसको भलेप्रकार जानकर श्रद्धासम्पन्न हुआ पुरुष सद्गति को प्राप्त होता है, अतएव यज्ञों से सम्बन्ध रखने वाले प्रातःपठनीय "पुरुषसूक्त" का प्रारम्भ करते हुए प्रथम परमात्मा के विराट्स्वरूप का वर्णन करते हैं:—

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिꣳ सर्वतः स्पृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥ १ ॥

यजु० ३१ । १

हे परमात्मन् ! सम्पूर्ण संसारस्थ मनुष्यों के शिर आपही के आभ्यन्तर होने से आप सहस्र शिरों वाले कहलाते हैं, एवं आप सहस्राक्ष हैं अर्थात् सब प्राणियों के चक्षु आपकी सत्ता से ही निमेष, उन्मेष को प्राप्त होते हैं, आप सहस्रपात् हैं अर्थात् सहस्र प्रकार से गतिशील हैं, आप सम्पूर्ण लोक लोकान्तरों को अपने स्वरूप में धारण करते हुए सूक्ष्म और स्थूल संसार को एकदेश में रखकर सर्वत्र व्यापक हैं, आप सबको पूर्ण करते हैं, इसलिये आप पूर्णपुरुष हैं, हे भगवन् ! आप अपने विराट्स्वरूप का ज्ञान हमको दीजिये ताकि हम आपके दिव्यस्वरूप को जानकर ब्रह्मपद को प्राप्त हों ॥

इस मंत्र में पुरुष और पुरुष के अङ्गों का रूपकालङ्कार बांधकर विराट् स्वरूप का वर्णन किया गया है, इससे कोई पुरुषविशेष अभिप्रेत नहीं किन्तु उसका असाधारण महत्व दर्शाया गया है ॥

पुरुष एवेदꣳ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥ २ ॥

यजु० ३१ । २

हे परमात्मन् ! जो कुछ इस ब्रह्माण्ड में हुआ, होगा वा है, वह सब आपके पूर्णस्वरूप से बाहर नहीं, इस संसार के सब जीव जो भौतिक पदार्थों के आधार पर अपने प्राणों को स्थिर करते हैं, उनको अमृत दान देने

वाले आप ही हैं, कृपाकरके अपने अमृतस्वरूप का ज्ञान देकर हमको सुख-सम्पन्न करें ॥

भाव यह है कि अविद्यादि क्लेशों से जीव बार बार इस संसार में जन्मता और मरता है, आपके अमृत पद को प्राप्त होकर ही जीव अमर होसकता है अन्यथा नहीं, हे परमात्मन्! आप अपना अमृतपद हमको प्रदानकर मृत्यु के भय से बचावें, आप "अमृततत्व" = मुक्तिपद के ईश्वर हैं, हम तुच्छ जीव अन्नादि पदार्थों से प्राण धारण करते हैं, आप हमको मुक्तिरूपफल प्रदान कर अमृत-भाव को प्राप्त कीजिये, यह हमारी आपसे प्रार्थना है ॥

एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पूरुषः ।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥३॥

यजु० ३१।३

हे परमात्मन्! यह जो कुछ चराचर ब्रह्माण्ड है अर्थात् जो कोटानकोटि सूर्य्य, चन्द्र, तारागण आदि लोकलोकान्तर हैं ये सब आपकी महिमा है, परन्तु आप इस महिमा से बहुत बड़े हैं, इस द्युलोक में आपका अमृतस्वरूप सर्वत्र परिपूर्ण होरहा है और यह ब्रह्माण्ड उसके "एकदेश" में है, जिसप्रकार इस विस्तृत आकाश में एक तृण एकदेशी होता है, इसी प्रकार आपके स्वरूप के एकदेश में कोटानकोटि ब्रह्माण्ड स्थित हैं ॥

भाव यह है कि प्रकृति तथा जीव यह दोनों ही परमात्मा के एकदेश हैं स्थिर हैं, जीवात्मा सूक्ष्मस्वरूप द्वारा चेतनसत्ता से स्थित और प्रकृति सूक्ष्म रूप द्वारा जड़सत्ता से स्थिर हैं, यह दोनों ही परमात्मा के स्वरूप में अंशरूप में, इन अंशों को लेकर परमात्मा को अंशी भी कहा जाता है, इसी अभिप्राय से जीव को परमात्मा का अंश कथन किया है, और इसी मंत्र के आधार पर गीता में श्रीकृष्णजी कथन करते हैं कि "ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः" = अनादि जीव ईश्वर का अंश है, अतएव सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड उसके एकपाद में स्थित और तीन पाद अमृत स्वरूप हैं ॥

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः ।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने अभि ॥ ४ ॥

यजु० ३१।४

परमात्मा संसार रूप तीन पादों से ऊपर है, वह सदा अमृतस्वरूप और संसार मरणधर्मा = मरने जन्मने वाला है, सजीव तथा निर्जीव दोनों प्रकार के प्राकृत पदार्थ और तीसरा जीवात्मा ये तीनों पाद परमात्मा के एक-देश में स्थित हैं, परमात्मा उक्त मायिक भावों से रहित, सदा एकरस, नित्य,

शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वभाव है, इसलिये हे जिज्ञासुजनो! तुम उसके जानने की इच्छा करते हुए एकमात्र उसी की उपासना में प्रवृत्त होओ ॥

इस वेद मंत्र के आशय को कृष्णजी ने गीता० १०।४२ में यों वर्णन किया है कि "विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्" = इस सम्पूर्ण संसार को परमात्मा ने अपने एकदेश में स्तम्भन किया हुआ है, इसी का नाम सर्वात्मवाद है अर्थात् सोलहकला पूर्ण परमात्मा उक्त तीनों पादों से कहलाता है, क्योंकि पांच भूत पांच प्राण, चतुष्टय अन्तःकरण, इच्छा और श्रद्धा इन सोलह कलाओं से सम्पूर्ण परमात्मा कहलाता है. कोई साकार वा मूर्तिमान् होकर परमात्मा सोलहकला पूर्ण नहीं होता किन्तु वह सदैव सोलह कला पूर्ण रहता है, इसका वर्णन षोडश कला वाले पुरुषनिरूपण "प्रश्नोपनिषद्" में भली भांति किया गया है और इसी के वर्णन में यजुर्वेद का यह मन्त्र है जिसमें स्पष्ट लिखा है कि:—

यस्मान्न जातः परो अन्यो अस्ति य आविवेश भुवनानि विश्वा।
प्रजापतिः प्रजया सꣳरराणस्त्रीणि ज्योतीꣳषि सचते स षोडशी॥

यजु० ८।३६

जिस परमात्मा के सदृश कोई अन्य नहीं वह परमात्मा सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों में व्यापक है. उसी को सोलहकला पूर्ण कहते हैं और कृष्णजी ने इसी मंत्र के आधार पर यह कहा है कि "एकांशेन स्थितो जगत्" = परमात्मा के एक अंश में सम्पूर्ण संसार स्थिर है, उसी ने सब जीवों और संसारगत सब पदार्थों को रचा और उसी ने मनुष्यों के उपदेशार्थ चारों वेदों की रचना करके अपूर्व ज्ञान दिया, जैसाकि निम्नलिखित मंत्र में वर्णन किया है कि:—

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥५॥

यजु० ३१।७

उसी यज्ञ = परमात्मा से सब मनुष्यों के उपदेशार्थ ऋग्, यजु, साम, अथर्व ये चारो वेद प्रकट हुए, वही परमात्मा सब के पूजा योग्य है, इसीलिये उसको "यज्ञ" कहा गया है, जो कई एक लोग यह कहते हैं कि "ऋग्वेद ही सब से प्रथम बना अन्य वेद ऋग्वेद के समय में न थे" उनको इस मंत्र से यह शिक्षा लेनी चाहिये कि यदि ऋग्वेद के समय में साम तथा यजु न

थे तो ऋग्वेद में साम, यजु का नाम कैसे आया? इस युक्ति से स्पष्ट सिद्ध है कि चार वेद एक ही काल में परमात्मा ने प्रकट किये भिन्न २ काल में नहीं ॥

हे वेदानुयायी पुरुषो! जिस परमात्मा ने मनुष्यजन्म के फलचतुष्टय की सिद्धि अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के लिये चारो वेदों का प्रकाश किया है उस परमात्मा का सायं प्रातः सदैव यज्ञों द्वारा पूजन करना चाहिये, जो हमें सुख सम्पत्ति का देने वाला है ॥

तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः ।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः ॥ ६ ॥

यजु० ३१।८

उसी पूर्ण परमात्मा से गतिशील प्राणी तथा उसी परमात्मा से अन्य गौ आदि पशु उत्पन्न हुए अर्थात् जिस परमात्मा ने सर्वोत्तम वेदरूप ज्ञान प्रदान किया उसी ने इस संसार को भी उत्पन्न किया है, इसलिये उसकी आज्ञा के विरुद्ध इस संसार में आचार व्यवहार करना उचित नहीं, या यों कहो कि उसकी आज्ञा का पालन करना ही अमृत पद की प्राप्ति और विरुद्ध चलना ही घोर दुःख को प्राप्त होना है ॥

कई एक लोग इसमें यह आशंका करते हैं कि वेद में मनुष्यों की उत्पत्ति का कथन नहीं, उनको यह स्मरण रखना चाहिये कि "जज्ञिरे स्वधया दिवो नरः" इस ऋग्वेद मंत्र में मनुष्यों की उत्पत्ति स्पष्ट वर्णन कीगई है, इसलिये यहां उनकी उत्पत्ति का वर्णन नहीं किया, अन्य युक्ति यह है कि चौथे मंत्र में सामान्यरूप से प्राणीमात्र की उत्पत्ति कथन की है और यहां विशेषरूप से गौ आदि पूज्य पशुओं की उत्पत्ति इसलिये वर्णन की है, कि इनके घृत दुग्धादि पदार्थ यज्ञ में विशेषरूप से उपयोगी हैं, इसलिये इनका यहां विशेषरूप से वर्णन करते हुए अग्रिम मंत्र में यज्ञ करने का प्रकार कथन किया है कि:—

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन्पुरुषं जातमग्रतः ।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥ ७ ॥

यजु० ३१।९

देवा = जो विद्वान् पुरुष उस परमात्मदेव को जो सब से प्रथम सिद्ध = अनादि अनन्त है, अपने हृदयरूपी बर्हिषि = आसन पर स्थान देते हुए अयजन्त = ज्ञानरूप यज्ञ करते और साध्या = साधनसम्पन्न योगी जन तथा

वेदार्थवेत्ता ऋषि लोग उक्त ज्ञानयज्ञ द्वारा ही परमात्मा का उपासन करते हैं वह सफल मनोरथ होकर सुख का अनुभव करते और अन्ततः परमात्मा को प्राप्त होते हैं, इसी का नाम शास्त्र में ज्ञानयज्ञ है, और इसी वेदमंत्र के आधार पर कृष्णजी गीता० ४। ३३ में कथन करते हैं किः—

श्रेयान् द्रव्यमयाद्यज्ञाद् ज्ञानयज्ञः परंतप ।
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते ॥

गी० ४।३३

हे अर्जुन ! द्रव्यरूपी यज्ञ से ज्ञानयज्ञ श्रेष्ठ है, क्योंकि सब कर्म नियमपूर्वक ज्ञान में समाप्त होजाते अर्थात् वह सब कर्म ज्ञानाकारता को पहुंच जाते हैं ॥

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुखं किमस्यासीत्किं बाहू किमूरू पादा उच्येते ॥८॥

यजु० ३१।१०

जो इस चराचर ब्रह्माण्ड के धारण करने वाला विराट् पुरुष है उसकी कल्पना किस प्रकार की जासकती है अर्थात् उसका मुख, बाहु, ऊरू तथा पाद क्या हैं ? इस मन्त्र में उसके मूर्तिमान् होने का प्रश्न किया गया है, या यों कहो कि जब वह मूर्तिमान् है तो उसके मुख, भुजा, जंघा तथा पैर कौनसे है ? इस प्रश्न का उत्तर इस आगे के मन्त्र में इस प्रकार दिया है किः—

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्याᳬ शूद्रो अजायत ॥ ९ ॥

यजु ३१।११

ब्राह्मण इस विराट् पुरुष का मुख, क्षत्रिय=राजालोग भुजायें, वैश्य ऊरू और शूद्र पादस्थानीय हैं अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र चारो वर्णों को मिलाकर यह विराट् पुरुष है, या यों कहो कि इन चारो वर्णों से भिन्न उसकी और कोई मूर्ति नहीं ॥

भाव यह है कि जिस देश में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र ये चारो वर्ण मुखादि अवयवों के समान मिले रहते हैं उस देश और धर्म की रक्षा परमात्मा अवश्य करते हैं, इस मन्त्र में परमात्मा का यह उपदेश है कि हे मनुष्यो ! तुम उक्त चार अंगों के समान एक दूसरे के रक्षक बनो,

जिसप्रकार मुख का काम ज्ञानेन्द्रियों द्वारा सम्पूर्ण शरीर की रक्षा करना, भुजाओं का काम बलद्वारा अपने आपको बचाना तथा दुष्टों का निग्रह करना, एवं ऊरू=जंघा का काम अपने बल से देशदेशान्तरों में जाकर धनरूप बल को उपार्जन करना और शूद्रों का काम पैरों के समान तीनों वर्णों को सेवा धर्म से सहारा देना है, इस प्रकार चारो वर्ण परस्पर सहायक बनें, इस रूपकालंकार मे परमात्मा ने चारो वर्णों का वर्णन किया है, या यों कहो कि इस विराट् पुरुष के मुख आदि सामर्थ्यों से वर्णों की उत्पत्ति का रूपक बांधा है, इस विषय का आगे के मंत्र में इस प्रकार भाव दर्शाया है कि:—

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्य्यो अजायत ।
श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ॥ १० ॥

यजु० ३१।१२

परमात्मा के मनसः=ज्ञानेन्द्रिय प्रधान सामर्थ्य से चन्द्रमा=आल्हादक पदार्थ उत्पन्न हुए, चक्षोः=अभिव्यक्त करने वाले सामर्थ्य से सूर्य्य, श्रोत्रात्=आकाशरूप सामर्थ्य से वायु तथा प्राण उत्पन्न हुए और मुख से अग्नि उत्पन्न हुई ॥

भाव यह है कि इस मंत्र में परमात्मा के प्रकृतिरूप सामर्थ्य को कारण बना कर उसके सत्वादि से चन्द्रमा तथा सूर्य्य आदि आल्हादक पदार्थों की उत्पत्ति कथन की है, इसका यह भी तात्पर्य्य है कि उसके मुखादि अवयव कल्पित हैं वास्तविक नहीं, यदि वास्तविक होते तो मुख से अग्नि की उत्पत्ति के अर्थ यह होते कि ब्राह्मण से अग्नि उत्पन्न हुई, क्योंकि पूर्व मंत्र में ब्राह्मण को मुख कथन किया है ॥

तात्पर्य्य यह है कि परमात्मा ने इस चराचर ब्रह्माण्ड को उत्पन्न किया और उसके स्वरूप में सब भौतिक पदार्थों का कारण प्रकृतिरूप सामर्थ्य है उसी से सब पदार्थ उत्पन्न होते है, इसमें परमात्मा ने विराट् पुरुष के ज्ञानार्थ ज्ञानयज्ञ का उपदेश किया है कि हे जिज्ञासु पुरुषो ! तुम सूर्य्य, चन्द्रमा, वायु तथा आकाशादि सब बृहत् पदार्थों को बृहस्पति परमात्मा की विभूति समझो, और उस विभूति को अग्रिम मंत्र में प्रकारान्तर से यों वर्णन किया है कि:—

नाभ्या आसीदन्तरिक्षꣳ शीर्ष्णो द्यौः समवर्त्तत ।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकां अकल्पयन् ॥११॥

यजु० ३१।१३

परमात्मा के नाभ्या = बन्धनरूप सामर्थ्य से अन्तरिक्षलोक उत्पन्न हुआ, शिर से देवलोक, पैरों से भूमि और श्रोत्र से दिशाओं तथा लोकलोकान्तरों की कल्पना कीगई ॥

इस मंत्र का भाव यह है कि जिसमें सूर्य्य, चन्द्र आदि ग्रह, उपग्रह विद्यमान हैं यह अन्तरिक्ष लोक परमात्मा के आकर्षणरूप सामर्थ्य से उत्पन्न हुआ है, इसलिये यह लोक लोकान्तरों को आकर्षित करता है, एवं शिररूप सामर्थ्यसे द्युलोक, इसी प्रकार भूमि आदि लोकों की उत्पत्ति हुई, यहां भी रूपकालङ्कार द्वारा सब प्राकृत पदार्थों का अङ्ग प्रत्यङ्गरूप से वर्णन किया है, जिसका आशय यह है कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों की रचना एकमात्र उसी विराटस्वरूप परमात्मा से हुई है, वही सबका निर्माता, धाता, लयकर्ता और वही यज्ञों का अधिष्ठाता है, जैसाकि अग्रिम मंत्र में यज्ञ की सामग्री वर्णन की है कि:--

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।
वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ॥ १२ ॥

यजु० ३१।१४

जब विद्वान् पुरुष ज्ञानयज्ञ करते हैं तो पुरुष = परमात्मा को हवि, वसन्त ऋतु को आज्यं = घी, एवं ग्रीष्मऋतु को इन्धन स्थानीय कल्पना करके वर्ष को यज्ञ मण्डप बनाकर ज्ञानयज्ञ करते हैं अर्थात् काल को यज्ञ का मण्डप तथा वसन्तादि ऋतुओं को यज्ञ के साधन की सामग्री बनाकर और पुरुष परमात्मा को विषय रखकर ज्ञानी लोग यज्ञ करते हैं, इसी का नाम " ज्ञानयज्ञ " है।

सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्तसमिधः कृताः ।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन्पुरुषं पशुम् ॥१३॥

यजु० ३१।१५

इस यज्ञ के गायत्र्यादि सात छन्द सूत्र के समान हैं और महत्तत्व से लेकर विंशति प्रकृति के विकार, महत्तत्व १, अहङ्कार २, ५ सूक्ष्म भूत, ५ स्थूल भूत पांच ज्ञानेन्द्रिय और त्रिकृतावस्थापन्न सत्त्व, रज, तम ये तीनों प्रकृति के गुण और एक इन सबका कारण प्रकृति, यह सब मिलकर इक्कीस हुए, जो इस ज्ञानयज्ञ की समिध हैं, इस यज्ञ में देवा = विद्वान् लोग पुरुषं = परमात्म पुरुष को अबध्नन् = ज्ञान का विषय बनाते हैं ॥

भाव यह है कि उक्त यज्ञ में परमात्मरूप पुरुष जो सम्पूर्ण लोकलोकान्तरों का अधिष्ठान है उसको द्रष्टव्य बनाकर इस यज्ञ में एकमात्र पूर्णपुरुष की उपासना कीजाती है, इसी का नाम "पुरुषयज्ञ" है, यहां "द्रष्टव्य" के अर्थ आंखों से देखने के नहीं किन्तु ज्ञानदृष्टि से देखने के हैं, जैसाकि "एकधैवानुद्रष्टव्य-मेतदप्रमेयं ध्रुवम्" बृहदा० ४। ४। २० "मनसैवानुद्रष्टव्यं नेहनानास्तिकिञ्चन" कठ० ४। ११ इत्यादि वाक्यों में परमात्मा को ज्ञानगोचर करना वर्णन किया है कि परमात्मा ज्ञान का विषय है चक्षु का विषय नहीं॥

कई एक लोग इसके यह अर्थ करते हैं कि इस यज्ञ में परमात्मा को पशुरूप कल्पना करके अबध्नन्=बध किया जाता है, इस अर्थ में असंगति यह है कि विराट् पुरुष का बध क्या? और उसको कौन बध करसकता है? और जब बध न हुआ तो पशु के साथ रूपकालङ्कार कैसे? क्योंकि पशु के साथ परमात्मा का हननादि क्रियाओं में कोई सादृश्य नहीं पाया जाता, इसलिये पशु के अर्थ यहां "द्रष्टव्य" के हैं किसी पशुविशेष के नहीं, इसी अभिप्राय से इस यज्ञरूप पुरुष को अग्रिम् मंत्र में सम्पूर्ण धर्मों का आधार कथन किया है कि:-

यज्ञेन यज्ञमयजन्तदेवास्तानिधर्माणिप्रथमान्यासन्।
तेहनाकं महिमानसचन्तयत्रपूर्वेसाध्याःसन्तिदेवाः॥ १४॥

यजु० ३१। १६

यज्ञ=सब धर्मों के आधारभूत परमात्मा की यज्ञेन=ज्ञानरूप यज्ञ से उपासना करना विद्वान् पुरुष मुख्यधर्म मानते हैं, अनुष्ठानी इसी धर्म का सेवन करते और इसी से सर्वोपरि सुख को लाभ करते हैं, पूर्वकाल के योगी लोग इसी का सेवन करते थे॥

भाव यह है कि इस मंत्र में परमात्मा ने प्राचीन और नवीन विद्वानों का दृष्टान्त देकर इस बात को स्पष्ट किया है कि सब से मुख्य धर्म ज्ञानयज्ञ है, जो पुरुष ज्ञानयज्ञ नहीं करते वह धर्म के मर्म को नहीं जानसकते॥

हे जिज्ञासु जनो! तुम्हें चाहिये कि तुम ज्ञानयज्ञ के याजक बनकर धार्मिक बनो, पुरुषसूक्त में परमात्मा ने धार्मिक बनने का विस्तृत उपदेश किया है और इस उपदेश में इस बात को स्पष्ट किया है कि तुम सर्वव्यापक पूर्ण-पुरुष को ध्यान का विषय बनाकर पुरुषयज्ञ करो, इसी का नाम ब्रह्मयज्ञ, ज्ञानयज्ञ वा ब्रह्मोपासना है॥

और जो लोग इन मंत्रों से पशुयज्ञ का प्रतिनिधि नरमेधयज्ञ निकालते हैं वह अत्यन्त भूल करते हैं, क्योंकि इस सूक्त में पशुयज्ञ का कहीं नाम तक नहीं पाया जाता और इस सूक्त में ब्रह्मविद्या का विस्तारपूर्वक वर्णन है "**सहस्र-शीर्षा पुरुषः**" यह वाक्य सर्वशक्तिमान् परमात्मा का वर्णन करता है, जिस-प्रकार "**सहस्रशृङ्गोवृषभः यः समुद्रादुदाचरत्**" ऋग्० ७।५६।७ यह मंत्र सूर्य्य को अनन्त किरणों वाला वर्णन करता है, शिर के अर्थ उक्त वाक्य में अङ्ग के नहीं किन्तु ब्रह्माश्रित शक्ति के है, इसी प्रकार "**सहस्रशीर्षा**" इसके अर्थ भी ब्रह्म की अनन्त शक्तियों के हैं किसी अङ्गविशेष के नहीं ॥

अधिक क्या, इस सूक्त को किसी ने अङ्ग प्रत्यङ्ग के वर्णन में लगाया है, किसी ने नरमेध में लगाया और कई एक लोगों ने बहुत नवीन समय में आकर इसका अर्घ्य और आचमनीय जड़ वस्तुओं में विनियोग किया है, वास्तव में इस सूक्त का विनियोग परमात्मा के महत्व वर्णन में है, जैसाकि "**एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पूरुषः**" यजु० ३१।३ इत्यादि मंत्रों में पूर्व वर्णन कर आये हैं ॥

यह बात सर्वसम्मत है कि पुरुषसूक्तादि सूक्त वेद के महत्व को वर्णन करते है, इन सूक्तो के पढ़ने से बड़े से बड़ा प्रतिपक्षी भी वेदों के महत्व के आगे शिर झुका देता है, और यह कहता है कि जिस वेद में इस प्रकार दार्शनिक भावों का वर्णन है उसको प्राकृत लोगो अर्थात् अबाध लोगों की पुस्तक कौन कहसकता है ॥

दुराग्रह के वशीभूत होकर कई एक लोग पुरुषसूक्त पर यह प्रश्न करते हैं कि इस सूक्त में जो ब्राह्मण आदि वर्णों का वर्णन है, इससे प्रतीत होता है कि यह सूक्त पीछे से मिलाया गया है ? इसका हम इतना ही उत्तर देते हैं कि यह सूक्त चारो वेदों में पाया जाता है, यदि कोई मिलाता तो एक में या दो में मिलाता सब में कैसे ॥

अन्य युक्ति यह है कि इस सूक्त की संस्कृत की बनावट वैदिकसमय की पाई जाती है, इसलिये इसके मिले हुए होने का कोई नाम नहीं ले सकता, यदि कोई यह कहे कि ब्राह्मणादि वर्णों का वर्णन मन्वादि स्मृति प्रतिपाद्य ही है अतएव मिला हुआ प्रतीत होता है ? इसका उत्तर यह है कि स्मृतियों के समय से पूर्व वेद के कई एक स्थलों में ब्राह्मणादि वर्णों का वर्णन स्पष्ट पाया जाता है, अधिक क्या "**न मृत्युरासीदमृतंनतर्हि**" ऋग्० १०।१२६।२ इत्यादि सूक्ष्म विषयों का वर्णन जिन सूक्तों में वर्णित है उन सूक्तों

के साथ पुरुषसूक्त का मिलान है अर्थात् इस सूक्त में भी सूक्ष्म भावों का वर्णन है ॥

और जो लोग वेदों को जङ्गली समय के मनुष्यों की कृति कहा करते हैं अथवा दिव्यशक्तिवाले देवों की कृति कहते हैं, उनको इन सूक्तों से शिक्षा लेनी चाहिये कि जब इन सूक्तों में ऐसे साहित्य का वर्णन है जो मनुष्य की शक्ति से सर्वथा बाहर है तो फिर वेदों के मनुष्यकृत होने की शङ्का ही कैसे होसकती है, और तो क्या सायणादि भाष्यकार जो प्रायः वेदों को देवतापरक बतलाते हैं वे भी इन सूक्तों में आकर इनका देवता परमात्मा वर्णन करते और मुक्त कण्ठ से कहते हैं कि "नासदासीन्नो सदासीत्" ऋग् १०।१२९।१=आदिसृष्टि में प्रकृति की अवस्था ऐसी थी कि न उसे सत् कहा जाता था और न असत् कहा जाता था, इस साइंस का वर्णन परमात्मा से भिन्न अन्य कोई नहीं कर सकता, यह कहकर उन्होंने भी परमात्मा को ही वेद की रचना करने वाला कथन किया है ॥

सच भी यही प्रतीत होता है कि जब आज कल भी प्रकृति के निरूपण मे लोग असमर्थ हैं जब कि साइन्स, फिलासफी और दार्शनिक विद्याओं का प्रबल प्रवाह बह रहा है तो कौन कहसकता है कि आदिसृष्टि में अशिक्षित लोगों ने ऐसे सूक्तों को रच लिया, इस तर्क से यही सिद्ध होता है कि आदि सृष्टि मे परमात्मा ने ही वेदरूपी ब्रह्मविद्या को स्वयं अपने आप प्रकट किया, जैसाकि आगे सूक्त लिखकर वेद का महत्व निरूपण किया है किः—

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परोयत्।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नंभः किमासीद्गहनं गभीरम् ॥१॥

ऋग्० ८।७।१७

प्रलयकाल में प्रकृति सत्=कार्य्यरूप में थी और न उस समय अत्यन्त असत् थी अर्थात् अपनी कारणावस्था में विद्यमान थी, उस समय प्रकृति रज=रजोगुण के भाव में न थी और नाही शून्य के समान तीनों गुणों से रहित थी किन्तु एक ऐसी अवस्था में थी जिसको न किसी वस्तु के ढकने वाली कहा जाता था और न जलरूप कहा जाता था किन्तु कारणरूप एक सूक्ष्मावस्था में स्थित थी ॥

नमृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्नः आसीत्प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किंचनास ॥२॥

न उस समय मृत्यु थी और न कोई अमर कहा जाता था और न दिन रात के चिन्ह रूप सूर्य्य चन्द्रमा थे उस समय एक निश्चेष्ट स्वधा धारण करने वाली शक्ति के साथ अद्वितीय ब्रह्म था, उससे भिन्न अन्य कुछ भी न था ॥

तम आसीत्तमसा गूढ़मग्रे प्रकेतं सलिलं सर्व मा इदं ।
तुच्छेनाभ्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिना जायतैकम् ॥ ३ ॥

उस प्रलयावस्था में सब कुछ अन्धकार से ढका हुआ था, या यों कहो कि उस समय यह सम्पूर्ण जगत् जलमय होने के कारण कुछ दृष्टिगत नहीं होता था परन्तु उस समय सब कुछ परमात्मा के सामर्थ्य में विद्यमान था ॥

कामस्तदग्रे समवर्त्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ।
सतो बन्धुमसति निरविन्दन्हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा ॥४॥

जब परमात्मा की इच्छा सृष्टि रचने की हुई तो उसने अपनी प्रकृति रूप सामर्थ्य से इस चराचर ब्रह्माण्ड को रचा और सब से प्रथम मनीषा=महत्तत्व=प्रकृति के प्रथम विकार को उत्पन्न किया, तदनन्तर उससे सर्वत्र फैलनेवाली रश्मिरूप प्रकृति की कार्य्यावस्था को उत्पन्न किया, पुनः स्थूल भूतों के सूक्ष्मकारण=शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इन पांच तन्मात्रों को रचा, जिस परमात्मा की रचना इस प्रकार गूढ़ है उसकी कृति को कौन जान सकता है, इस भाव को नीचे के मंत्र में इस प्रकार निरूपण किया है कि:—

को अद्धा वेद क इह प्रवोचत्कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः ।
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाथा को वेद यत आबभूव ॥ ५ ॥

निश्चयपूर्वक कौन कह सकता है कि जिस प्रकृति से यह ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ है उसका वास्तविक रूप क्या है, क्योंकि ऋषि मुनि आदि जितने विद्वान हुए हैं वे सब इस सृष्टि की रचना के अनन्तर ही हुए हैं, इसलिये यह सब इसकी रचना के वर्णन में मूक हैं ॥

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न ।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद ॥६॥

यह सृष्टि जिस प्रकार उत्पन्न हुई और जिस प्रकार स्थिर है तथा जिस प्रकार प्रलय को प्राप्त होगी, इसके तत्त्व को ईश्वर से भिन्न अन्य कोई नहीं जानता, इसी अभिप्राय से उपनिषत्कर्त्ता ऋषियों ने कहा है कि "यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्म" तै॰सं॰ ३।१=जिससे इस सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति तथा

प्रलय होती है वह ब्रह्म है, उसी की जिज्ञासा करनी चाहिये, इस प्रकार ब्रह्म का निरूपण जो उपनिषदों में पाया जाता है तथा "जन्माद्यस्य यतः" ब्र० सू० १ । १ । २ में ब्रह्मविद्या का निरूपण किया है वह सब वेदों में पाई जाती है, इसलिये ब्रह्मविद्या का सर्वोपरि भाण्डार वेद ही है कोई अन्य पुस्तक नहीं ॥

वेदों में शङ्का होने का कारण यह है कि हिरण्यगर्भादि सूक्तों के अर्थ कई एक लोगों ने बिगाड़कर लिख दिये हैं कि वेद उस समय का वर्णन करता है जिस समय हिरण्य=सुवर्णधातु लोगों को ज्ञात हुई, यह अर्थ सर्वथा मिथ्या है, क्योंकि हिरण्यगर्भ के अर्थ यह हैं कि जिसके गर्भ में सूर्य्य चन्द्रमा आदि सब पदार्थ विद्यमान हैं उसका नाम "हिरण्यगर्भ" है, हिरण्य नाम सूर्य्य चन्द्रमा आदि पदार्थों का है अथवा हिरण्य नाम प्रकृति का है अर्थात् प्रकृति के ये चराचर कार्य्य कोटानकोटि ब्रह्माण्ड जिसके भीतर हों उसको "हिरण्यगर्भ" कहते हैं, इस प्रकार यह सूक्त ब्रह्मविद्या का निरूपण करता है किसी प्राकृतभाव का नहीं ॥

विष्णुसूक्त

सं०-इस सूक्त में परमात्मा को विष्णु = सर्वव्यापक कथन करते हुए यह वर्णन किया है कि मनुष्यसमुदाय परमात्मा को सर्वव्यापक मानकर किसी देश काल में भी पाप करने का साहस न करे अर्थात् उसका सर्वकाल में भय करते हुए अपने जीवन को सत्कर्म में प्रवृत्त रखे:—

परो मात्रया तन्वा वृधान न ते महित्वमन्वश्नुवन्ति ।
उभे ते विद्म रजसा पृथिव्या विष्णो देव त्वं परमस्य वित्से॥१॥

ऋग्० ७ । ६६ । १

विष्णो = हे सर्वव्यापक दिव्यस्वरूप परमात्मन ! आप सूक्ष्म से सूक्ष्म स्वरूप धारण किये हुए सर्वत्र व्यापक होरहे हैं, तुम्हारे वास्तविक स्वरूप को कोई ठीक २ नहीं जान सकता, तुम्हीं पृथिवीलोक तथा द्युलोक आदि सब भुवनों के स्वामी हो, आपसे भिन्न इस संसार को एकदेशी बनाकर स्थिर होने वाला कोई पदार्थ नहीं, केवल आप ही सर्वोपरि विष्णु = व्यापकस्वरूप ब्रह्म हैं ॥

भाव यह है कि इस मंत्र में परमात्मा ने यह उपदेश किया है कि हे जिज्ञासु जनो ! तुम लोग उस परमपुरुष की उपासना तथा प्रार्थना करो जो एक मात्र सबका आधार, सबका नियन्ता, सबको नियम में रखने वाला और जो सबका पालक, पोषक तथा रक्षक है ॥

न ते विष्णो जायमानो न जातो देव महिम्नः परमंतमाप ।
उदस्तभ्ना नाकमृष्वं बृहंतं दाधर्थ प्राचीं ककुभं पृथिव्याः॥२॥

विष्णो = हे व्यापक परमात्मन् ! महिम्न = तुम्हारे महत्व को कोई भी नहीं पासकता, न कोई ऐसी शक्ति उत्पन्न हुई न है और न होगी जो तुम्हारे महत्व को पासके, आपने अपनी शक्ति से लोकलोकान्तरों को धारण किया हुआ है अर्थात् कोटानकोटि ब्रह्माण्ड आपकी आकर्षणशक्ति से भ्रमण करते और विकर्षणशक्ति से प्रलय को प्राप्त होते हैं, तुम सजातीय, विजातीय, स्वगतभेदशून्य और नित्य शुद्ध-बुद्ध मुक्तस्वभाव हो ॥

भाव यह है कि इस मंत्र में परमात्मा ने अपनी विभूति का महत्व दर्शाया है, आस्तिक लोग इस विभूति के महत्व को देखकर परमात्मा के महत्व के आगे सिर झुकाते और नास्तिक लोग अपने अज्ञान के कारण इस महत्व का दर्शन नहीं कर सकते, अतएव अनेक प्रकार की वेदना तथा दुःखों को प्राप्त होकर मनुष्यजीवन व्यर्थ व्यतीत करते हैं ॥

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्।
समूढमस्य पांसुरे ॥ ३ ॥ ऋग्० १।२२।१७

विष्णु=व्यापक परमात्मा ने इस जगत् को पृथिवी, अन्तरिक्ष और प्रकाशमय सूर्य्यमण्डल, इन तीन प्रकार से रचा है, इन तीनों प्रकारों में सब चराचर ब्रह्माण्ड आजाते हैं और उस ज्योतिस्वरूप परमात्मा ने अपने विष्णुपद को उक्त तीनों पदों में भलीभांति दर्शाया है परन्तु अज्ञानतिमिरान्ध लोग उसकी महिमा को नहीं देखते किन्तु विषयवासनासरित में बहकर अनर्थरूप सागर में जा गिरते हैं, इसी अभिप्राय से परमात्मा ने कहा है कि **"समूढमस्य पांसुरे"**=रजोमय धूलि में यह पद गूढ़ है अर्थात् जिसप्रकार धूलि में मिली हुई सूक्ष्म वस्तु को कोई पुरुष ढूंढ नहीं सकता एवं परमात्मा का परमपद भी इस मायामयधूलि में मिला हुआ है, इसलिये बिना साधन सम्पत्ति के कोई पुरुष इस विष्णुपद को नहीं पासकता अर्थात् प्रकृति के तीनों गुण पुरुष को त्रिगुण=तिगुनी बटी हुई रज्जू=रस्सी के समान दृढ़ता से बांधते हैं और इन तीनों गुणों से बन्धे हुए पुरुष ईश्वरीय राज्य की स्वतंत्रता को अनुभव नहीं करसकते किन्तु दिन रात इसी रज्जु से बन्धे हुए प्रकृतिरूप खूंटे के चहुं ओर घूमते रहते हैं, इसी विषय में किसी विरक्तपुरुष की यह उक्ति है कि:-

पशवोऽपि पलायन्ते बन्धनान्मोचिता भुवि।
बन्धनं किं मनुष्यस्य यस्मान्नैष पलायते ॥

पशु भी खूंटे से खोल देने से भाग जाते हैं पर पुरुष अपने मनोरथ रूप खूंटे से बन्धा हुआ नहीं भागसकता, या यों कहो कि रजोगुण से बंधा हुआ पुरुष स्वतन्त्रता का लाभ नहीं करसकता, इसी अभिप्राय से श्रीकृष्णजी ने गीता में कहा है कि **"मम माया दुरत्यया"**=ईश्वर की माया का अतिक्रमण करना अति कठिन है, इसी माया के वशीभूत होकर पुरुष विष्णुपद को भूल जाते हैं ॥

और **"समूढमस्य पांसुरे"** के यह भी अर्थ हैं कि अन्तरिक्षस्थ रेणुओं में कोटानकोटि ब्रह्माण्ड छिपे हुए हैं जिनका यथावत् जानना मनुष्य की शक्ति से सर्वथा बाहर है, इसलिये मनुष्य को चाहिये कि परमात्मपरायण होकर उसके महत्व का चिन्तन करे ॥

इसी अभिप्राय से **"उत्तिष्ठताव पश्यतेन्द्रस्य भागम्"** ऋग्० १०।१८०।३

इत्यादि मन्त्रों में यह कथन किया है कि हे जिज्ञासु जनो ! तुम उठो और परमात्मा के ऐश्वर्य्य को देखो, परमात्मा बार बार मनुष्य को बोधन करते हैं ताकि मनुष्य परमात्मपरायण होकर कल्याण को प्राप्त हों, इसी भाव को कठ० ३ । १४ में इस प्रकार वर्णन किया है कि:—

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत । क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गम पथस्तत् कवयो वदन्ति ॥

हे मुमुक्षु जनो ! उठो, जागो और अपने श्रेष्ठ उपदेशकों को प्राप्त होकर तत्वज्ञान को उपलब्ध करो, क्योंकि जिस संसार में तुमने चलना है वह बड़ा दुर्गम है, फिर कैसा है, छुरे की धार के समान अति तीक्ष्ण है ॥

दूसरा भाव यह है कि इस वाक्य में परमात्मप्राप्ति को अत्यन्त पुरुषार्थ साध्य कथन किया है अर्थात् परमात्मप्राप्तिरूप पथ को कवय=विद्वान् पुरुष कठिनता से प्राप्त होने योग्य कहते हैं, अतएव सबका कर्तव्य है कि उसको अति पुरुषार्थ से प्राप्त कर संसार में सुख अनुभव करें ॥

त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः ।
अतो धर्माणि धारयन् ॥ ४ ॥ ऋग्० १ । २२ । १८

विष्णु=जो सम्पूर्ण संसार में व्यापक, सबका रक्षक, जीवों के कर्मों को धारण करने वाला तथा सबको धर्ममार्ग में प्रवृत्त कराने वाला और जो सबको स्वकर्मानुसार फल देनेवाला है उस परमात्मा ने तीन प्रकार से इस सृष्टि को रचा, जैसाकि पूर्व वर्णन कर आये हैं ॥

इसके दूसरे अर्थ यह भी होते हैं कि भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान । उत्तम, मध्यम, मन्द । कार्य्य, सूक्ष्म और स्थूल ये तीनों शरीर । जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तथा भूः, भुवः, स्वः इत्यादि तीन वस्तुओं का परमात्मा ने ही निर्माण करके इन धर्मों को धारण किया है अर्थात् परमात्मा की रचना से भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान इन तीनों कालों का व्यवहार हुआ, उसी ने जाग्रत्, स्वप्न तथा सुषुप्ति को रचा, और जब प्रलय होती है तो सुषुप्ति और सृष्टि समय जाग्रत् भी उसी से होते हैं, इस भाव को मनुजी ने इस प्रकार वर्णन किया है कि:—

यदा स देवो जागर्त्ति तदेदं चेष्टते जगत् ।
यदा स्वपिति शान्तात्मा तदा सर्वं निमीलिति ॥

मनु० १ । ४३

जब वह देव जागता है तब यह जगत् चेष्टा करता और जब वह शान्तरूप परमात्मा सोता है तब सब जगत् चेष्टारहित होता है, अधिक क्या

जाग्रत् तथा सुषुप्ति आदि अनेकविध धर्मों के धारण करने से परमात्मा को सब धर्मों का अधिकरण कथन किया गया है ॥

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे ।
इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ५ ॥ ऋग्० १।२२।१९

हे पुरुषो ! तुम विष्णोः=व्यापक परमात्मा के कर्माणि=कार्यों को पश्यत=देखो जिनके देखने से तुम में व्रतधारण की शक्ति उत्पन्न होगी, क्योंकि वही व्यापक परमात्मा ऐश्वर्य्य का योग्य सखा अर्थात् ऐश्वर्य्य देने वाला है ॥

भाव यह है कि जो पुरुष परमात्मा की दृष्टि में किसी व्रत को धारण करते हैं वही ऐश्वर्यसम्पन्न होते हैं अन्य नहीं, जो ब्रह्मचर्य्य व्रत को धारण करते हैं वह वीर्य्यलाभ तथा विद्यारूपी बल को प्राप्त होते हैं, जो तपरूप व्रत धारण करते हैं वह तपस्वी और तेजस्वी बनते हैं, एवं अनन्त प्रकार के व्रत है जिनके धारण करने का विधान परमात्मा ने उक्त मंत्र में किया है, और आगे के मंत्र में परमात्मा के स्वरूपज्ञान का वर्णन इस प्रकार किया है कि:—

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः ।
दिवीव चक्षुराततम् ॥ ६ ॥ ऋग्० १।२२।२०

उस व्यापक परमात्मा के स्वरूप को विद्वान् लोग देखते हैं, जिस प्रकार निर्मल आकाश में व्याप्त हुआ चक्षु सम्पूर्ण वस्तुओं को विषय करता है इसी प्रकार अपने विद्यारूपी चक्षुओं से विद्वान् लोग उसके स्वरूप का साक्षात्कार करते हैं, मूर्ख उसके स्वरूप को अनुभव नहीं कर सकते ॥

तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते ।
विष्णोर्यत्परमं पदम् ॥ ७ ॥ ऋग्० १।२२।२१

बुद्धिमान् लोग जो परमात्मा के विषय में जागते हैं अर्थात् उसकी आज्ञा पालन करते हैं वह परमात्मा के परमपद को प्रकाशित पदार्थ के समान प्रकाश करते हैं अर्थात् जिन्होंने विद्यारूपी प्रकाश से अज्ञानरूपी अन्धकार को निवृत्त किया है वही परमात्मा के स्वरूप का साक्षात्कार करते हुए अन्य लोगों के लिये उसका उपदेश करते हैं ॥

इरावती धेनुमती हि भूतं सूयवसिनी मनुषे दशस्या ।
व्यस्तभ्ना रोदसी विष्णवेते दाधर्थ पृथिवीमभितोमयूखैः ॥८॥

ऋग्० ७।९९।३

हे परमात्मन् ! आपने नानाविध रत्नों के देने वाली पृथिवी को मनुष्यों के लिये उत्पन्न करके अपने ऐश्वर्य्य की ज्योतियों द्वारा इस ब्रह्माण्ड को नाना प्रकार से विभूषित किया हुआ है, हे भगवन् ! आप अपनी प्रकाशित ज्योतियों से हमारे हृदयरूपी मन्दिर के तिमिर को नाश करके हमारे लिये लोक तथा परलोक के ऐश्वर्य्यों को प्रदान करें ॥

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान् मृत्योर्मुक्षीयमाऽमृतात् ॥६॥

ऋग्० ७ । ५६ । १२

इस मंत्र में परमात्मप्राप्ति का वर्णन किया है कि हम लोग उस सर्वशक्तिमत् परब्रह्म की उपासना करें जो त्र्यम्बक = इस संसार की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय का करने वाला, सुगन्धि = जिसका यश सुगन्ध के समान सर्वत्र फैला हुआ है, जो पुष्टिवर्द्धनं = इस संसार में प्रत्येक पदार्थ को पुष्ट करनेवाला और जिसके तत्वज्ञान से पुरुष इस संसाररूप स्नेहलता से उर्वारुक फल के समान पृथक् होजाता है अर्थात् जिसप्रकार खर्बूजा पककर अपनी बेल से स्वयं अलग होजाता है एवं भगवत् कृपा से ज्ञानी लोग इस संसाररूप स्नेहवल्ली से पृथक् होजाते हैं. इस अवस्था में न उनको कोई कष्ट होता और नाही उनके बन्धन के हेतुरूप सम्बन्धियों को कोई वेदना होती है, इसी का नाम मृत्यु को जीतना वा अमृतभाव और इसी का नाम जीवन्मुक्ति है ॥

इस मंत्र के अर्थ यह भी हैं कि हे जगदीश्वर ! "माऽमृतात्" = हमको अमृतभाव से कदापि विरक्त न करें किन्तु हम सदैव अमृतभाव के जिज्ञासु बने रहें ॥

परमात्मा ने उक्त मंत्र में मुक्ति और वैराग्य का उपदेश किया है कि मुक्त पुरुष सदाचार से सौवर्ष पर्य्यन्त जीवन धारण करते हुए बिना किसी कष्ट से खर्बूजे के समान परिपक्व अवस्था को प्राप्त होकर इस संसार को छोड़ें और अपरिपक्व अवस्था अर्थात् अकालमृत्यु को कदापि प्राप्त न हों ॥

इस मन्त्र में परमात्मा ने अकालमृत्यु के जीतने का उपदेश किया है कि जो लोग अमृतपद को समझकर अपने अमृतभाव को नहीं त्यागते उनकी अकालमृत्यु कदापि नहीं होती ॥

"त्र्यम्बक" के अर्थ कई टीकाकारोंने भिन्न २ प्रकार से किये हैं, किसी ने तीन नेत्रों वाले रुद्र के किये हैं, किसी ने ब्रह्मा, विष्णु, शिव इन तीन देवों के उत्पन्न करनेवाले देव के किये हैं, किसी ने उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय इन तीनों

भावों के कर्त्ता परब्रह्म के किये हैं, वास्तव में इसके अर्थ तीन प्रकार की शक्ति वाले परब्रह्म के ही हैं, क्योंकि "तिस्रः अम्बा यस्य स त्र्यम्बकः" = जिस की तीन शक्ति हों उसको "त्र्यम्बक" कहते हैं ॥

इस मन्त्र का मुक्त पुरुष की प्रार्थना में विनियोग है किसी अन्य कर्म में नहीं किन्तु व्यापक ब्रह्म की उपासना में इस मन्त्र को विनियुक्त करना चाहिये, या यों कहो कि भूः, भुवः, स्वः इन तीनो लोकों के निर्माता का नाम यहां "त्र्यम्बक" है ॥

कई एक लोग यहां यह आशंका करते हैं कि "मा अमृतात्" = हमें अमृत - मुक्ति से पृथक् मत कर, इससे पाया जाता है कि परमात्मा मुक्त पुरुषों का भी स्वामी है, इसलिये यह कथन कियागया है कि तू मुक्ति अवस्था से हमें मत लौटा, इसका उत्तर यह है कि जब परमात्मा सर्वस्वामी है तो मुक्तपुरुष उसके ऐश्वर्य्य से बाहर नहीं, इसलिये मुक्त पुरुष का ऐश्वर्य्य सीमाबद्ध = अन्तवाला है ॥

कई एक टीकाकार इसके यह भी अर्थ करते हैं कि "अमृत" के अर्थ यहां स्वर्ग के हैं, इसलिये स्वर्ग = सुख भोगने और मृत्यु से रहित होने की उक्त मंत्र में प्रार्थना है, और कोई इसके यह भी अर्थ करते हैं कि "आ अमृतात्" अमृत की अवस्था तक हमको परमात्मा मोक्ष सुख से वियुक्त न करें, यहां "आ" मर्य्यादा के अर्थों में है अर्थात् मुक्ति की सीमा पर्य्यन्त परमात्मा हमको अमृत सुख का भागी बनायें, पश्चात् हम योगी जनों के समान आकर फिर संसार का उद्धार करें अर्थात् हम लोग मर्य्यादापुरुषोत्तम पुरुषों के समान जन्म लाभ करें, यह प्रार्थना है ॥

स्मरण रहे कि परमात्मा की आज्ञापालन तथा उसकी उपासना के बिना मनुष्य कदापि अमृत सुख का लाभ नहीं कर सकता और न इस संसार में सद्गति को प्राप्त होसकता है, अमृत पद उन्हीं पुरुषों को प्राप्त होता है जो शुद्ध हृदय से वेदप्रतिपादित कर्मों का अनुष्ठान करते हुए परमात्मज्ञान को उपलब्ध करते हैं ॥

या यों कहो कि वेदादि सत्यशास्त्रों का अध्ययन, उपासनारूप तपश्चर्या और धारणा, ध्यान तथा समाधि द्वारा परमात्मचिन्तन करने से पुरुष की आत्मा पवित्र होकर उस पद को प्राप्त होता है जिसको वेद ने अमृत कहा है, इसीलिये वेद और ऋषि महर्षियों ने आत्मा की पवित्रता के लिये सन्ध्या अग्निहोत्रादि पांच यज्ञों का विधान किया है अर्थात् इन यज्ञों का अनुष्ठान करना ही पुरुष को कृतकृत्य करता है, अतएव सुख की इच्छा वाले मनुष्यमात्र का कर्तव्य है कि वह वेदप्रतिपादित कर्मों का पालन करते हुए अभ्युदय-

सांसारिक ऐश्वर्य्य तथा निःश्रेयस=अमृतपद को प्राप्त हों, जैसाकि वेदभगवान् उपदेश करते हैं किः—

प्रति त्वा स्तोमैरीळते वसिष्ठा उषर्बुधः सुभगे तुष्टुवांसः।
गवांनेत्री वाजपत्नी न उच्छोषः सुजाते प्रथमा जरस्व॥

ऋग्० ७। ७६। ६

अर्थ—हे मनुष्यो! (सुभगे) सौभाग्य को प्राप्त करानेवाली (उषः) उषा समय में (बुधः) जागो, और (स्तोमैः) यज्ञों द्वारा (त्वा, प्रति) परमात्म प्रति (ईळते) स्तुति प्रार्थना करो; क्योंकि (गवां, नेत्री) यह उषाकाल इन्द्रियों को संयम में रखने के कारण (तुष्टुवांसः) स्तुति योग्य है, फिर कैसा है (वाजपत्नी) अन्नादि ऐश्वर्य्य का स्वामी और इसी के सेवन से पुरुष (उच्छ) देदीप्यमान होता तथा बल बुद्धि की वृद्धि और दीर्घायु होती है, यही मनुष्य को प्रथम सेवनीय है जो (स्वजाते) उच्चादर्श की ओर लेजाता, और (जरस्व) अवगुणों का नाशक है अर्थात् उषाकाल में जागने वाले अमृत सुख को प्राप्त होते है, इसी भाव को भगवान् मनु ने इस प्रकार उद्धृत किया है किः-

ब्राह्ममुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत्।
कायक्लेशांश्च तन्मूलान् वेदतत्वार्थमेव च॥

मनु० ४। ९२

अर्थ-हे मनुष्यो! (ब्राह्ममुहूर्ते) ब्राह्ममुहूर्त्त=उषाकाल में (बुध्येत) उठो=जागो (च) और (धर्मार्थौ) धर्म तथा अर्थ का (अनुचिन्तयेत्) चिन्तन करो, और (कायक्लेशान्) शारीरक आधि व्याधि तथा (तन्मूलान्) उनके मूलभूत पुण्य पाप को सोचते हुए (वेदतत्वार्थ) वेद के तत्वार्थ को विचारो॥

भाव यह है कि सुख की कामना वाला पुरुष रात्रि के चौथे पहर=दो घड़ी रात रहने पर उठे और उठकर धर्म=निःश्रेयस की सिद्धि तथा अर्थ=ऐश्वर्य्यशाली होने का उपाय सोचता हुआ अपनी शारीरक अवस्था पर पूर्णतया ध्यान रखे, क्योंकि शारीरक व्याधि ग्रसित पुरुष कदापि तपस्वी नहीं हो सकता और तप के बिना ऐश्वर्य्य तथा निःश्रेयस की प्राप्ति कदापि नहीं होती, इसीलिये मनु उपदेश करते हैं कि प्रथम शारीरक उन्नति करते हुए वेद के तत्व को विचारो अर्थात् अपने कर्तव्य का पालन करो, जिसकी विधि इस प्रकार है कि पुरुष प्रातःकाल में जागे और प्रथम शौच, दन्तधावन तथा स्नानादि से निवृत्त होकर धर्म का चिन्तन करे अर्थात् सन्ध्या अग्निहोत्रादि कर्मों में प्रवृत्त हो, फिर अर्थ=धर्मपूर्वक धन उपार्जन करने का उपाय सोचे जो

परिवार पालन के लिये अत्यावश्यक है परन्तु धन का उपार्जन धर्मपूर्वक करे, क्योंकि अधर्म से कमाया हुआ धन कुल तथा कीर्ति का नाशक और दुःख का देने वाला होता है, इसलिये अधर्म से धन कमाने की चेष्टा न करे ॥

अब प्रथम ब्रह्मयज्ञ = सन्ध्या का विधान करते हुए "सन्ध्या" शब्द पर विचार करते हैं अर्थात् "सम्" और "ध्यै" इन दो पदों के जोड़ने और उनके अन्त में "अ" प्रत्यय लगाने से "सन्ध्या" शब्द बनता है, "सम्" का अर्थ भली भांति तथा "ध्यै" का अर्थ ध्यान करना है और "अ" प्रत्यय यहां "में" के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है सो भलीभांति ध्यान कियाजाय जिसमें उसका नाम "सन्ध्या" है अर्थात् रात्रि और दिन की जो सायं तथा प्रातः दो सन्धियां होती हैं इन्हीं दो सन्धियों में परमात्मा का ध्यान करना "सन्ध्या" कहाता है और वेदों में भी इन्हीं दोनों कालों में सन्ध्या करना लिखा है, जैसाकिः—

उपत्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम् ।
नमो भरन्त एमसि ॥ साम० अ० १ खं० २ मं० ४

अर्थ—(अग्ने) हे मार्गदर्शक परमात्मन्! ऐसी कृपा करो कि (वयम्) हम लोग (धिया) मन से (नमः, भरन्तः) नमस्कार करते हुए (दिवे, दिवे) प्रति दिन (दोषावस्तः) सायं तथा प्रातः (त्वा) आपकी (उप, एमसि) उपासना करें ॥

भाव यह है कि हे ज्ञानदाता परमात्मन्! आप ऐसा दृढ़ ज्ञान और श्रद्धा भक्ति हमको प्रदान करें कि हम लोग प्रतिदिन सायं प्रातः विनय से भरपूर होकर मन बुद्धि द्वारा आपकी समीपता प्राप्त करें अर्थात् हम लोग प्रतिदिन दोनों काल सन्ध्या करने में तत्पर रहें ॥

प्रातःकाल की सन्ध्या का समय कम से कम दो घड़ी रात रहे से सूर्योदय तक और सायंकाल की सन्ध्या का समय सूर्यास्त से तारों के दर्शन पर्य्यन्त है, क्योंकि मन्त्रों के अर्थों पर भलेप्रकार विचार करके सन्ध्या करने में घण्टे से भी अधिक समय लगता है, इसलिये ब्राह्ममुहूर्त्तकाल में उठकर ही सन्ध्योपासन के लिये तैयार होना चाहिये ॥

अब आगे सन्ध्या की विधि भलेप्रकार जानकर अनुष्ठान सम्पन्न होः—

सन्ध्या-विधि

सन्ध्या प्रारम्भ करने से पहिले शारीरक और मानसिक शुद्धि करनी चाहिये, शरीर की शुद्धि के लिये प्रातःकाल बस्ती से बाहर कुछ दूर निकल जायं और वहीं मलमूत्रादि का त्याग करके किसी कुएं या नदी नाले पर दन्त-धावन करने के पश्चात् शरीर को भलेप्रकार मलकर स्नान करें और आंखों पर ताज़ा जल छिड़कें, यदि बाहर न जा सकें तो घर में ही शौचादि से निवृत्त होकर स्नानादि द्वारा शरीर का शुद्ध करना चाहिये ॥

जब इस प्रकार शरीर की शुद्धि होचुके तब किसी एकान्त स्थान में बैठकर मन को रागद्वेषादि दूषित वृत्तियों से यत्नपूर्वक हटाकर ईश्वर के सत्यादि गुणों के चिन्तन में लगावें, इसी का नाम मानसिक शुद्धि है, जैसाकिः—

अद्भिर्गात्राणि शुद्ध्यन्ति मनः सत्येन शुद्ध्यति ।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्ध्यति ॥

मनु० ५ । १०९

अर्थ—जल से शरीर शुद्ध होता, सत्यभाषण करने से मन शुद्ध होता, विद्या तथा तप से जीवात्मा और ज्ञान से बुद्धि शुद्ध होता है ॥

शारीरक शुद्धि की अपेक्षा मानसिक=अन्तःकरण की शुद्धि अत्याव-श्यक है, क्योंकि यही परमेश्वर की प्राप्ति का मुख्य साधन है, यदि कभी शारीरक शुद्धि न होसके तो भी सन्ध्या अवश्य करनी चाहिये, क्योंकि सन्ध्या न करने में पाप होता है ॥

"सन्ध्योपासन" प्रारम्भ करते समय सब से पहिले **"आचमन मन्त्र"** पढ़कर तीन बार आचमन करें अर्थात् दायें—दक्षिण हाथ की हथेली में जल लेकर तीनबार पीवें जो कण्ठ के नीचे हृदय तक पहुंच जाय, इससे कण्ठ में कफ और पित्त की निवृत्ति होती है ॥

फिर इन्द्रियस्पर्श मन्त्रों द्वारा इन्द्रियों का स्पर्श करके मार्जन-मन्त्र पढ़कर मध्यमा और अनामिका अंगुलियों के अग्रभाग से शिर आदि अङ्गों पर जल छिड़कें ताकि आलस्य दूर होकर प्राणायाम करने के लिये चित्त स्वस्थ होजाय।

मार्जन करने के पश्चात् **"प्राणायाम मन्त्र"** पढ़कर प्राणायाम इस प्रकार करें कि प्रथम श्वास को बलपूर्वक बाहर निकालकर वहीं इतनी देर

ठहरायें कि मन्त्र का जप मन में एक बार अवश्य होजाय, फिर श्वास को धीरे २ भीतर खींचकर उसी प्रकार मन्त्र का एक बार जप करें, यह एक प्राणायाम हुआ, ऐसे न्यून से न्यून तीन प्राणायाम करने चाहियें, जब अभ्यास करते २ एक श्वास में एकबार जप सहज में होने लगे तब दो और फिर तीन चार बार मन्त्रों के जप का अभ्यास करें, इससे अधिक भी अभ्यास करते २ पुरुष समाधि तक पहुंच सकता है, परन्तु जितना सुगमता से होसके उतना ही करना चाहिये, क्योंकि हठात् अधिक करने से रोगग्रस्त होजाना सम्भव है ॥

विधिपूर्वक प्राणायाम करने से शारीरिक तथा मानसिक अशुद्धि का नाश होकर ज्ञान का प्रकाश होता है, जैसाकि मनु महाराज ने भी वर्णन किया है कि:-

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः ।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात् ॥

अर्थ—जैसे सुवर्ण आदि धातु अग्नि में तपाने से शुद्ध होजाते हैं वैसे ही प्राणायाम करने से मन आदि इन्द्रियों के दोष नाश होकर निर्मल होजाती हैं ॥

प्राणायाम के उपरान्त "अघमर्षण" और "मनसापरिक्रमा" तथा "उपस्थान" आदि मन्त्रों से परमेश्वर की प्रार्थना उपासना करें और अन्त में अपने इस कर्तव्य को ईश्वरार्पण करके "नमः शम्भवाय०" यह "नमस्कार मन्त्र" पढकर ईश्वर का प्रणाम कर सन्ध्या समाप्त करे ॥

अथ ब्रह्मयज्ञः प्रारभ्यते

आचमन मंत्रः

ओं० शन्नोदेवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये ।
शंयोरभिस्रवन्तुनः ॥ १ ॥ यजु० ३६ । १२

पदा०—(देवीः) दिव्यगुणस्वरूप परमात्मा (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारक (भवन्तु) हों (अभिष्टये) हमारी इच्छायें पूर्ण हों, और (नः) हम पर (पीतये) पूर्णानन्द की प्राप्ति के लिये (अभि) सब ओर से (शंयोः) सुख को (स्रवन्तु) वर्षा करें ॥

भावा०—हे सर्वव्यापक तथा सर्वप्रकाशक परमात्मन ! आप मनोवांछित आनन्द की प्राप्ति के लिये कल्याणकारी हो और हम पर सब ओर से सुख की वृष्टि करे ॥

उक्त मन्त्र के प्रारम्भ में जो "ओ३म्" कहा गया है, यह परमात्मा के सब नामों में मुख्य नाम है, जिसके संक्षिप्त अर्थ यह हैं कि जो परमात्मा के ध्यान करने वालों की सब दुखों से रक्षा करे उसको "ओ३म्" कहते हैं॥

यह "ओ३म्" शब्द अ-उ-म्, इन तीन अक्षरों से बना है "अकार" का अर्थ विराट्, अग्नि तथा विश्व है अर्थात् सब के प्रकाशक को "विराट्" ज्ञानस्वरूप तथा सर्वव्यापक को "अग्नि" और सबके आश्रय तथा सब ब्रह्माण्डों में प्रविष्ट को "विश्व" कहते है॥

"उकार" का अर्थ हिरण्यगर्भ, वायु तथा तैजसादि है अर्थात् सूर्य्यादि ज्योति जिसके गर्भ=आश्रित हों उसको "हिरण्यगर्भ" अनन्त बलवान् तथा सबका धारण करने वाला होने से "वायु" और प्रकाशस्वरूप तथा सबका प्रकाशक होने से परमात्मा का नाम "तैजस" है॥

"मकार" का अर्थ ईश्वर, आदित्य तथा प्राज्ञ है अर्थात् सर्वशक्तिमान् तथा न्यायकारी को "ईश्वर" नाशरहित को "आदित्य" और ज्ञानस्वरूप तथा सर्वज्ञ परमात्मा को "प्राज्ञ" कहते हैं॥

इस एक नाम में परमात्मा के अनेक नाम आजाते हैं इसलिये "ओ३म्" शब्दवाची परमात्मा के गुणों को सन्मुख रखकर "ओ३म्" नाम का जप करना विशेष फलदायक है॥

इन्द्रियस्पर्श मंत्राः

ओं० वाक् वाक्, ओं० प्राणः प्राणः, ओं० चक्षुः चक्षुः, ओं० श्रोत्रं श्रोत्रम्, ओं० नाभिः, ओं० हृदयम्, ओं० कण्ठः, ओं० शिरः, ओं० बाहुभ्यां यशोबलम्, ओं० करतलकरपृष्ठे॥ २॥

पदा०—हे रक्षक परमात्मन्! (वाक्, वाक्) वाणी और उसके अधिष्ठान को (प्राणः, प्राणः) प्राण और उसके अधिष्ठान को (चक्षुः, चक्षुः) नेत्र और उसके अधिष्ठान को (श्रोत्रं, श्रोत्रम्) कान और श्रवणशक्ति को (नाभिः) नाभि को (हृदयम्) हृदय को (कण्ठः) कण्ठ को (शिरः) शिर को (बाहुभ्याम्) बाहों को (करतलकरपृष्ठे) ऊपर नीचे हाथों को (यशोबलम्) यश और बल दें॥

भावा०—हे अन्तर्यामी परमात्मन्! मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि वाक्, प्राण, नेत्र, श्रोत्र; नाभि, हृदय, कण्ठ, शिर, बाहु और हाथ आदि से

कदापि पाप न करूं, और आप कृपाकरके मेरे सब अङ्ग और उपाङ्गों को कीर्ति तथा बल प्रदान करें ॥

स्मरण रहे कि उक्त वाक्यों के पढ़ते समय जिस २ अंग का जिस क्रम से नाम आवे उसको उसी क्रम से छूते जावें ॥

मार्जन मंत्राः

ओं० भूः पुनातु शिरसि । ओं० भुवः पुनातु नेत्रयोः । ओं० स्वः पुनातु कण्ठे । ओं० महः पुनातु हृदये । ओं० जनः पुनातु नाभ्याम् । ओं० तपः पुनातु पादयोः । ओं० सत्यं पुनातु पुनः शिरसि । ओं खं ब्रह्म पुनातु सर्वत्र ॥३॥

पदा०—(भूः) सत्यस्वरूप तथा सबका जीवनाधार परमात्मा (शिरसि) शिर को (पुनातु) पवित्र करे (भुवः) अपने सेवकों को सुखदाता प्रभु (नेत्रयोः, पुनातु) दोनों नेत्रों को पवित्र करे (स्वः) सर्वव्यापक, सबको नियम में रखने वाला तथा सबका आधार परमात्मा (कण्ठे, पुनातु) कण्ठ को पवित्र करे (महः) सब से बड़ा तथा सबका पूज्य देव (हृदये, पुनातु) हृदय को पवित्र करे (जनः) सब जगत् का उत्पादक पिता (नाभ्यां, पुनातु) नाभि को पवित्र करे (तपः) दुष्टों का दण्डदाता तथा ज्ञानस्वरूप परमेश्वर (पादयोः, पुनातु) पाओं को पवित्र करे (सत्यम्) अविनाशी प्रभु (पुनः, शिरसि, पुनातु) फिर शिर को पवित्र करे (खं, ब्रह्म) आकाशवत् व्यापक, सब से बड़ा जगदीश्वर (सर्वत्र, पुनातु) सब स्थानों को पवित्र करे ॥

इन मन्त्रों के पढ़ते समय जिस २ अङ्ग का नाम आवे उस २ अङ्ग पर मध्यमा तथा अनामिका अंगुलियों से जल छिड़कते जावें जिससे आलस दूर होकर परमात्मा में चित्तवृत्ति का निरोध हो ॥

प्राणायाम मंत्राः

**ओं भूः । ओं भुवः । ओं स्वः । ओं महः ।
ओं जनः । ओं तपः । ओं सत्यम् ॥ ४ ॥**

पदा०—हे भगवन ! आप (भूः) सद्रूप तथा चैतन्यस्वरूप (भुवः) सुखदायक (स्वः) आनन्दमय (महः) सबसे बड़े तथा सर्वपूज्य (जनः) सबके जनक=पिता (तपः) दुष्टों को दण्डदाता और सबको जानने वाले (सत्यम्) अविनाशी हो ॥

इस मंत्र का जप और इसके अर्थ का विचार मन में करते हुए न्यून से न्यून तीन प्राणायाम करें, जिसका प्रकार पीछे सन्ध्याविधि में लिख आये हैं ॥

अघमर्षण मंत्राः

ओं० ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत ॥
ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः ॥ ५ ॥

ऋग्० ८।८।४८।१

पदा०—(ऋतम्) वेद (च) और (सत्यम्) कार्य्यरूप प्रकृति (अभि, इद्धात्, तपसः) सब ओर से प्रकाशमान, ज्ञानस्वरूप परमात्मा से (अध्य-जायत) उत्पन्न हुए (ततः) उसी प्रभु से (रात्री) रात्रि (अजायत) उत्पन्न हुई (ततः) उसी परमात्मा के अनन्त सामर्थ्य से (समुद्रः, अर्णवः) मेघ-मण्डल तथा समुद्र उत्पन्न हुआ ॥

ओं० समुद्रादर्णवादधि सम्वत्सरो अजायत ।
अहो रात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी ॥ ६ ॥

ऋग्० ८।८।४८।२

पदा०—(समुद्रात, अर्णवात्, अधि) उस मेघमण्डल तथा समुद्र के पश्चात् (सम्वत्सरो, अजायत) सम्वत्सर = वर्ष उत्पन्न हुआ (विश्वस्य, मिषतः) इस क्रियात्मक जगत् को (वशी) वश में रखने वाले प्रभु ने (अहोरात्राणि) दिन और रात को (विदधत्) बनाया ॥

ओं० सूर्य्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् ।
दिवञ्चपृथिवीञ्चान्तरिक्षमथो स्वः ॥ ७ ॥

ऋग्० ८।८।४८।३

पदा०—(धाता) सब के धारण पोषण करने वाले परमात्मा ने (सूर्याचन्द्रमसौ) सूर्य्य तथा चन्द्रमा को (यथा, पूर्वम्) पहले जैसे (अक-ल्पयत्) बनाये (दिवम्) द्युलोक (पृथिवीं) पृथिवी लोक (अन्तरिक्षं) अन्तरिक्ष लोक (अथो) और (स्वः) अन्य प्रकाशमान तथा प्रकाशरहित लोकलोकान्तरों को भी बनाया = रचा ॥

पूर्वोक्त तीनों अघमर्षण मन्त्रों का भावार्थ यह है कि सृष्टि की आदि में सदा जगत् को धारण करने वाले ईश्वर के सामर्थ्य और सहज स्वभाव से जगत् उत्पन्न होता, तत्पश्चात् अग्नि आदि चार ऋषियों द्वारा ऋगादि चार

वेदों का प्रकाश हुआ करता है और फिर प्रलय भी उसी ईश्वर के सामर्थ्य से होता है, उसी परमपिता सर्वान्तर्यामी परमात्मा की आज्ञापालन करने से पापों का क्षय होकर सुख की प्राप्ति होती है, इसी से इनका नाम "अघमर्षण" मन्त्र है अर्थात् "अघ" नाम पापों से "मर्षण" मुक्त कर परमात्मा में श्रद्धा भक्ति उत्पन्न कराने वाले मन्त्रों को "अघमर्षण" मंत्र कहते हैं ॥

बार २ सृष्टि उत्पन्न करने में ईश्वर का तात्पर्य्य जीवों के पाप पुण्य का फल भुगाना है जो उसके स्वभाव से ही सदा होता रहता है, जैसाकि "स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च" इत्यादि वाक्यों में वर्णन किया है कि यह सब उसके स्वभाव से ही सदा होता रहता है, उसको किसी विशेष प्रयत्न की आवश्यकता नहीं होती ॥

स्मरण रहे कि परमेश्वर अपनी अन्तर्यामिता से सब के पाप पुण्य यथावत् देखता हुआ उनका फल ठीक २ न्यायपूर्वक देता है, इसलिये हमें उचित है कि हम मन, वाणी तथा कर्म से कभी कोई पाप करने का साहस न करें।

अब निम्नलिखित ६ परिक्रमा मन्त्रों में परमात्मा को सब दिशाओं में उपस्थित मानकर यह प्रार्थना कीगई है कि हे परमपिता परमात्मन ! आप हमारी सब ओर से रक्षा करें, जैसाकि:—

मनसापरिक्रमा मन्त्राः

ओं० प्राचीदिगग्निरधिपतिरसितोरक्षिताऽऽदित्या इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तंवो जम्भे दध्मः ॥ ८ ॥ अथर्व० ३। ६। २७। १

पदा०—(प्राचीदिक्) पूर्वदिशा अथवा जिस ओर अपना मुख हो उस ओर (अग्निः) ज्ञानस्वरूप सर्वज्ञ परमात्मा (अधिपतिः) जो सब जगत् का स्वामी (असितः) बन्धनरहित (रक्षिता) हमारी रक्षा करने वाला है (आदित्या, इषवः) जिसके बाण सूर्य्य की किरण समान हैं (तेभ्यः, नमः, अधिपतिभ्यः) उन सब गुणों के अधिपति परमपिता परमात्मा को हम लोग वारंबार नमस्कार करते हैं (रक्षितृभ्यः, नमः, इषुभ्यः, नमः, एभ्यः, अस्तु) जो ईश्वर के गुण जगत् की रक्षा करने वाले और पापियों को बाणों के समान पीड़ा देने वाले हैं उनको हमारा नमस्कार हो (यः, अस्मान्, द्वेष्टि) जो प्राणी हमसे द्वेष करते अथवा (यम्, वयम्, द्विष्मः) जिन धार्मिकों से

हम द्वेष करते हैं (तं, वो, जम्भे, दध्मः) उन सबके बुरे भावों को उन किरण-समान बाणों के मुख में देकर दग्ध करते हैं ताकि न हमसे कोई बैर करे और न हम किसी प्राणी से बैर करें किन्तु हम सब मिलकर परस्पर मित्रता-पूर्वक बर्तें ॥

ओं० दक्षिणादिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी-रक्षिता पितर इषवः ॥९॥ तेभ्यो० (शेष पूर्ववत्)

अथर्व० ३ । ६ । २७ । २

पदा०—(दक्षिणा, दिक्) दक्षिणा—दाहनी ओर (इन्द्रः) परमैश्वर्य्य-वान् (अधिपतिः) राजा (तिरश्चिराजी) तिरछे=वेदविरुद्ध चलने वाले दुष्ट-जनों के समूह से (पितरः, इषवः) ज्ञानी पुरुषों के सत्य उपदेशरूप बाणों द्वारा (रक्षिता) हमारी रक्षा करने वाला है अर्थात् उनके कुसंगरूप हानि से हमें बचाने वाला है, उसके लिये हमारा नमस्कार हो ॥ (शेष पूर्ववत्)

ओं० प्रतीचीदिग्वरुणोऽधिपतिः पृदाकू-रक्षितान्नमिषवः ॥१०॥ तेभ्यो० (शेष पूर्ववत्)

अथर्व० । ३ । ६ । २७ । ३

पदा०—(प्रतीची, दिक्) पश्चिम दिशा वा पीठ की ओर (वरुणः) ग्रहण करने योग्य, सर्वोत्तम (अधिपतिः) परमात्मारूपी राजा (पृदाकू) विषधारी जीवों से (अन्न, इषवः) औषधरूप बाणों द्वारा (रक्षिता) रक्षा करता है, उसके लिये हमारा नमस्कार हो ॥ (शेष पूर्ववत्)

ओं० उदीचीदिक् सोमोऽधिपतिः स्वजोरक्षिता-शनिरिषवः ॥ ११ ॥ तेभ्यो० (शेष पूर्ववत्)

अथर्व० ३ । ६ । २७ । ४

पदा०—(उदीची, दिक्) उत्तर दिशा वा बांई ओर (सोमः) शान्ति-स्वरूप (अधिपतिः) राजा (स्वजः) सदा अजन्मा है जो (अशनिः, इषवः) बिजुली रूप बाणों द्वारा (रक्षिता) हमारी रक्षा करता है, उसके लिये हमारा नमस्कार हो ॥ (शेष पूर्ववत्)

ओं० ध्रुवादिग्विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः ॥१२॥ तेभ्यो० (शेष पूर्ववत्)

अथर्व० ३ । ६ । २७ । ५

पदा०—(ध्रुवा, दिक्) नीचे पृथिवी की ओर (विष्णुः, अधिपतिः) व्यापक परमात्मा (कल्माष, ग्रीवः) हरित रंगवाले वृक्ष जिसकी ग्रीवा के समान और (वीरुध, इषवः) लतायें जिसके बाणों के समान हैं वह प्रभु (रक्षिता) हमारी रक्षा करता है, उस परमात्मदेव को हमारा नमस्कार हो ॥
(शेष पूर्ववत्)

ओं० ऊर्ध्वादिग्बृहस्पतिरधिपतिःश्वित्रोरक्षिता वर्षमिषवः ॥ १३ ॥ तेभ्यो० (शेष पूर्ववत्)

अथर्व० ३ । ६ । २७ । ६

पदा०—(ऊर्ध्वा, दिक्) ऊपर आकाश की ओर (बृहस्पतिः, अधिपतिः) सब से बड़ा परमात्मरूपी राजा (श्वित्रः) सब भयानक रोगों से (रक्षिता) हमारी रक्षा करने वाला और (वर्ष, इषवः) वर्षा जिसके बाणों के समान है, उस प्रभु को हमारा नमस्कार हो ॥ (शेष पूर्ववत्)

भावा०—(१) प्राचीदिक्—पूर्वदिशा को यहां प्रथम इसलिये गिना है कि ज्ञानेन्द्रियों का प्रायः इसी ओर प्रवाह है, प्राची के अर्थ केवल पूर्वदिशा के नहीं किन्तु मुख के ओर की दिशा के हैं इसी अभिप्राय से यहां अग्नि परमात्मा के तेजस्वी गुण को अधिपति माना गया है और उसको बन्धन रहित इसलिये कहा गया है कि परमात्मा का तेज किसी बन्धन में नहीं और वही सबकी रक्षा करने वाला है—आदित्य को इषुओं के समान इस अभिप्राय से कहा है कि परमात्मा के तेज का सूचक जैसा सूर्य्य है वैसा अन्य कोई पदार्थ नहीं और सूर्य्य अपनी किरणों रूप बाणों द्वारा दुष्कर्मी पुरुषों को दुःख प्रदान करता और सत्कर्मी पुरुषों के लिये सुख का प्रदाता है, अंत में अधिपति और इषुओं को नमः इसलिये कहा है कि परमात्मा और उसका ऐश्वर्य्य सत्कार के योग्य है, अधिक क्या जो पुरुष प्राचीदिक् प्रवाहिनी ज्ञानेन्द्रियों के प्रवाह को अपने वशीभूत करलेता है वही संसार में अभ्युदय तथा मोक्षसुख का भागी होता है ॥

(२)—"दक्षिणादिक्" से तात्पर्य्य दक्षिण भुजा का है, इसका इन्द्र अधिपति इसलिये कथन किया गया है कि इस अंग में विद्युत्शक्ति वा बल अधिक होता है और इसीलिये यह सब प्रकार के विषमगति वाले विघ्न तथा शत्रुओं से रक्षा करता और यह अंग कर्मप्रधान है, इसलिये पितर=विज्ञानी पुरुषों को इसका रक्षक माना गया है, क्योंकि जहां ज्ञान के अधीन कर्म रहता है अर्थात् ज्ञानपूर्वक कर्म किया जाता है वहां कोई विघ्न नहीं होता ॥

(३)—"प्रतीचीदिक्" के अर्थ मुख से पीछे के हैं अर्थात् शरीर के पृष्ठभागस्थ अंग प्रत्यङ्गों में जो नाड़ी नस हैं उनका अधिपति वरुण इसलिये माना गया है कि जिसप्रकार शरीरस्थ पृष्ठभाग के नाडी नसों ने सम्पूर्ण शरीर को सुदृढ किया हुआ है इसी प्रकार वरुण—परमात्मा सब प्रकार से हमको आच्छादन करता है॥

"पृदाकूरक्षिता" का तात्पर्य्य यह है कि बड़े २ अजगररूप शत्रुओं के प्रहारो से भी उक्त अंग की परमात्मा सुदृढ़ता के कारण रक्षा करता है, और अन्न का इषु इस दिशा की रक्षा के लिये इस अभिप्राय से माना है कि जो पुरुष अन्नाद हैं अर्थात् अन्न के भोगने में समर्थ हैं उनके लिये अन्न इस भाग की इषुओं के समान रक्षा करता है॥

(४)—"उदीचीदिक्" जो उक्त तीनों अंगों से भिन्न वामाङ्ग है उसका सोमगुणप्रधान परमात्मा स्वामी है अर्थात् जिसप्रकार परमात्मा के सोमगुण में शान्ति बिराजमान है इसी प्रकार इस अंग में भी स्वतःसिद्ध शान्ति बिराजमान है "स्वजः" को रक्षिता इस अंग का इसलिये माना गया है कि शान्तगुण किसी कारण से अभिव्यक्ति में नहीं आता किन्तु वह परमात्मा का स्वरूपभूत गुण है, इसलिये उस गुण का रक्षक भी नैमित्तिक नहीं किन्तु स्वतःसिद्ध है॥

तात्पर्य्य यह है कि एक परमात्मा का स्वरूपभूत गुण है और एक तटस्थ गुण है, तटस्थ वह कहलाता है जो किसी निमित्त से प्रकट होता है, यहां उस तटस्थ गुण से भिन्न स्वरूपभूतगुण को रक्षक माना गया है, और अशनि=वज्र का यहां इषु इस अभिप्राय से कथन किया है कि जो कोई परमात्मा के स्वतःसिद्ध शान्तिगुण में आकर विघ्न डालता है उस पर इषुओं के समान वज्रपात होता है अर्थात् शान्ति को स्थापन करने वाली विद्युत्शक्ति उस दुष्ट का विनाश करती है॥

(५)—"ध्रुवादिक्" से तात्पर्य्य शरीर के अधो अंग का है, इसका विष्णु अधिपति इसलिये माना गया है कि शरीर की नाड़ियों द्वारा रस इस अंग में पहुंचकर सर्वाधिकरण विष्णु परमात्मा की कृपा से अधिपतिरूप होकर विराजमान होते हैं, और चित्रित विचित्रित ग्रीवा वाली नाड़ियों को रक्षिता इस अभिप्राय से माना है कि वह सब मिलकर पादप्रदेश में ऐसी दृढ़ता देती हैं कि मानो रक्षक के समान स्थिर होजाती हैं और वीरुध=लताओं के समान जो इनका तान वितान है वह मनुष्य की रक्षा के लिये इषुओं के समान

है अर्थात् जिसप्रकार इषु=बाण विघ्नों से रक्षा करते हैं इसी प्रकार पादप्रदेशस्थ नाड़ी नस के बन्धन भी विघ्नों से रक्षा करते हैं ॥

(६)—"ऊर्ध्वादिक्" का तात्पर्य्य शरीर के सर्वोपरि उच्च प्रदेश शिर से है, इसका बृहस्पति अधिपति इसलिये मानागया है कि जिस प्रकार मनुष्य का शिर सब शारीरक ऐश्वर्यों का पति है इसी प्रकार बृहस्पति परमात्मा भी सब ऐश्वर्यों का स्वामी है, "श्वित्र"=सब प्रकार के रोगों से रक्षा करने वाला परमात्मा इसका रक्षक है और वर्ष=वृष्टि के समान अन्नादि रसों को बहाने वाले नाड़ी नस शिर की रक्षा के लिये विराजमान हैं ॥

तात्पर्य्य यह है कि शिरोभाग से वृष्टि के समान बहते हुए रस सम्पूर्ण शरीर की रक्षा और पुष्टि करते हैं, भाव यह है कि शरीर के प्राच्यादि छओं अंगों की रक्षा इस मनसापरिक्रमा में अभिप्रेत है, इन मंन्त्रों के पाठ-समय मनुष्य को अपने छओं अंगों की रक्षा पर दृष्टि डालनी चाहिये, जिसप्रकार शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष ये छ अंग वेद की रक्षा करते हैं इसीप्रकार धर्म की रक्षा के लिये शरीर के छओं अंगों की रक्षा यहां वर्णन कीगई है और जिसप्रकार नीति के छ अंग राष्ट्र की रक्षा करते हैं इसीप्रकार यहां प्राच्यादि दिशाओं के अधिपति और रक्षक मिलकर इस बृहत्ब्रह्माण्ड की रक्षा करते हैं, इन मनसापरिक्रमा के मन्त्रों में शरीर की रक्षा तथा राष्ट्र की रक्षा इत्यादि अनेक रक्षायें विराट् पुरुष के ध्यान द्वारा वर्णन कीगई हैं कि मनुष्य इन दिशा उपदिशाओं में चित्त की वृत्ति फेरकर सब ओर से अपनी रक्षा करे ॥

उपस्थान मन्त्राः

ओं उद्वयंतमसस्परिस्वः पश्यन्त उत्तरम् ।
देवं देवत्रा सूर्य्यमगन्मज्योतिरुत्तमम् ॥१४॥

यजु० ३५ । १४

पदा०—हे परमात्मदेव ! आप (तमसः, परि) अज्ञानरूप अन्धकार से परे (स्वः) आनन्दस्वरूप (पश्यन्त, उत्तरम्) प्रलय के पीछे भी सदा वर्त्तमान (देवं, देवत्रा) प्रकाशकों में प्रकाशक (सूर्य्य) चराचर का आत्मा (ज्योतिः, उत्तमम्) स्वयंप्रकाश, सर्वोत्तम आपको (वयं) हम लोग (उत, अगन्म) प्राप्त हों, आप हमारी रक्षा करें ॥

भावा०—जो परमात्मा अज्ञानरूप अन्धकार से परे, आनन्दस्वरूप, नित्य, परमानन्द दाता, परमदेव, चराचर का आत्मा, स्वयं प्रकाश और जो सर्वोत्तम है उसको हम श्रद्धापूर्वक ज्ञानचक्षु से देखते हुए प्राप्त हों ॥

ओं उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः ।
दृशे विश्वाय सूर्य्यम् ॥ १५ ॥ यजु० ३३ । ३१

पदा०—(उत, उ, वहन्ति, केतवः) वेदश्रुति, जगत्‌रचना तथा सृष्टि-नियमरूप किरणें (विश्वाय, दृशे) सबको दर्शाने के लिये (देवं) सब देवों के देव (सूर्य्यं) सर्वोत्पादक (त्यं) आपको प्रकाशित करते हैं, क्योंकि (जातवेदसं) ऋगादि चारों वेद आपसे ही प्रकट हुए हैं ॥

भावा०—इस मन्त्र का भाव यह है कि वेदश्रुति, जगतरचना और सृष्टि नियमरूप किरणें विश्वविद्या को दर्शाने के लिये उसी परमात्मा को प्रकाशित करती हैं जो जातवेदा है अर्थात् जिससे चारों वेद तथा प्रकृति प्रकाशित हुई और जो सब जगत् का उत्पादक है, वह देव हमारे लिये सुखकारी हो ॥

ओं चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः । आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्ष ँ सूर्य्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा ।१६।

यजु० १३ । २७

पदा०—हे भगवन् ! आप (चित्रं) अद्भुत स्वरूप हैं (देवानां) विद्वानों के हृदय में सदा (उत्, अगात) विराजमान (अनीकं) बलस्वरूप हैं (मित्रस्य) मित्र-भक्त (वरुणस्य) श्रेष्ठ पुरुष (अग्नेः) अग्नि, इन सबके (चक्षुः) प्रकाशक हैं (जगतः, तस्थुषः) जङ्गम तथा स्थावर संसार के (आत्मा) आत्मा (सूर्य्यः) प्रकाशक है (द्यावा, पृथिवी, अन्तरिक्षं) द्युलोक, पृथिवी-लोक तथा मध्यलोक को (आप्रा), सब ओर से व्याप्त कर रहे हैं ॥

भावा०—वह परमात्मदेव जो अद्भुत, बलस्वरूप तथा स्वयं प्रकाश, सर्व मित्र और श्रेष्ठ पुरुषों का प्रकाशक तथा बिजुली का भी प्रकाशक और जङ्गम तथा स्थावर जगत् में व्यापक तथा विद्वानों के हृदय में भलीभांति प्राप्त है, और जो प्रकाशमान तथा प्रकाशरहित लोकों और उनके मध्यस्थ लोकों का धारण तथा रक्षण करने वाला है वह प्रभु हमारे लिये कल्याणकारी हो ॥

ओं तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् ।
पश्येम शरदः शतंजीवेम शरदः शत ँ शृणु-
याम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः
स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥ १७ ॥

यजु० ३६ । १४

पदा०—(तत्) वह परमात्मा जो (चक्षुः) सर्वद्रष्टा (देव, हितं) विद्वानों का हितकारी (पुरस्तात्) सृष्टि से पहले भी वर्त्तमान (शुक्रं) शुद्धस्वरूप, और (उत्, चरत्) उत्कृष्टता से सर्वव्यापक है, उसकी कृपा से हमलोग (शतं,शरदः) सौ वर्ष (पश्येम) देखें (शतं, शरदः, जीवेम) सौ वर्ष जीवें (शतं, शरदः, शृणुयाम) सौ वर्ष सुनें (शतं, शरदः, प्रब्रवाम) सौ वर्ष उपदेश करें और सुनें (अदीनाः, स्याम) हम स्वतन्त्र होवें (च) और (भूयः शरदः, शतात्) सौ वर्ष से अधिक भी देखें, सुनें, जीवें, स्वतन्त्र हों और उपदेश करें ॥

भावा०—वह परमात्मा जो सबका द्रष्टा, विद्वानों का हितकारी, सृष्टि से पूर्व विद्यमान, पवित्र और उत्कृष्टता से व्यापक है उसकी कृपा से हम लोग सौ वर्ष तक स्वतन्त्र जीवें, सौ वर्ष तक सृष्टि रचना द्वारा उसका दर्शन करते रहें, सौ वर्ष तक उसके गुणकीर्तन करते तथा सुनते रहें, और जो सौ वर्ष से अधिक जीवें तो इसी प्रकार जीवें, ऐसी कृपा करो ॥

गायत्री=गुरुमन्त्रः

ओं भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यम्भर्गोदेवस्य-
धीमहि । धियो योनः प्रचोदयात् ॥ १८ ॥ यजु० ३६ । ३

पदा०—(भूः) प्राणों से प्यारा (भुवः) दुःखविनाशक (स्वः) सुख-स्वरूप (सवितुः) सब जगत् को उत्पन्न करने वाले (तत्) उस (भर्गः) पापनाशक (वरेण्यं) पूजनीयतम=सर्वोपरि पूजनीय (देवस्य) देव का (धीमहि) हम ध्यान करते हैं (यः) जो (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को (प्रचोदयात्) सदा उत्तम कामों में लगावे अर्थात् शुभमार्ग में चलावे ॥

भावा०—जगत्पिता, सर्वोत्तम, उपासनीय, विज्ञानस्वरूप, दिव्यगुण-युक्त, सबके आत्माओं में प्रकाश करने वाला और सब सुखों का दाता जो परमात्मा है उसको हम प्रेमभक्ति से अपने हृदय में धारण करें ताकि वह हमारी बुद्धियों को उत्तम धर्मयुक्त कामों में लगावे ॥

नमस्कार मंत्रः

ओं नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शंकराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ॥१९॥

यजु० १६ । ४१

पदा०—(शं-भवाय च, मयो-भवाय च) कल्याण तथा सुख के देने वाले परमात्मा को (नमः) नमस्कार है (शंकराय च, मयस्कराय च) मंगलस्वरूप

तथा मंगलदाता आपको (नमः) नमस्कार है (शिवाय, च, शिवतराय, च) कल्याणस्वरूप और अत्यन्त कल्याणस्वरूप आपको (नमः) हमारा नमस्कार है॥

भावा०—हे सुखस्वरूप तथा सुखदाता परमात्मन्! आपको हमारा नमस्कार हो, हे मंगलस्वरूप तथा मंगलदाता परमेश्वर! आपको हमारा नमस्कार हो, हे कल्याणस्वरूप और कल्याणदाता परमात्मन्! आपको हमारा नमस्कार हो॥

स्मरण रहे कि पूर्वोक्त मन्त्रों से परमेश्वर की उपासना करने के पश्चात् अपने शुभकर्मों को इस प्रार्थना के साथ ईश्वर समर्पण करें कि हे दयानिधे परमेश्वर! जो २ उत्तम काम हम आपकी कृपा से करते हैं वह सब आपके अर्पण हैं, दया करो कि हम आपको प्राप्त होकर मनुष्यजीवन के धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षरूप फलचतुष्टय को प्राप्त हों॥

इति सन्ध्योपासनविधिः समाप्तः

अथ देवयज्ञः प्रारभ्यते

१—देवयज्ञ का नाम ही अग्निहोत्र है और इसी के पर्यायवाची होम तथा हवन शब्द हैं॥

२—अग्नि और होत्र इन दो शब्दों के मिलने से "अग्निहोत्र" शब्द बना है, अग्नि का अर्थ ज्ञानस्वरूप ईश्वर और होत्र का अर्थ दान है, अतएव जो दान ईश्वर=ईश्वरीय प्रजा के निमित्त दियाजाय उसका नाम "अग्निहोत्र" है, और यह प्रत्यक्ष है कि हवन में जिन पदार्थों की आहुतियां दी जाती हैं वह पदार्थ अग्नि के स्पर्श से छिन्न भिन्न होकर वायु को शुद्ध करते हुए मेघमण्डल तक पहुंचते और वर्षाजल को शुद्ध करते हैं जिससे पृथ्वी के सब पदार्थ शुद्ध उत्पन्न होकर प्राणीमात्र को सुख पहुंचाते हैं और यही ईश्वर के निमित्त दान देना कहाता है॥

३—विद्वानों का संग और उनकी सेवा तथा दिव्यगुणों का धारण और सत्यविद्या की उन्नति करना भी "देवयज्ञ" कहाता है॥

४—जैसे सन्ध्या का दोनों काल विधान है वैसे ही हवन भी दोनों काल अवश्य कर्तव्य है, जैसाकिः—

(१) ओं सायं सायं गृहपतिर्नो अग्निःप्रातः प्रातःसौमनस्य दाता।

वसोर्वसोर्वसुदान एधी वयं त्वेन धानास तनवं पुषेम् ॥

अथर्व० १६ । ७ । ३

अर्थ—हे घर की रक्षक अग्नि ! तू हमको प्रतिदिन सायंकाल से प्रातःकाल तक सुख देने वाली हो, हे सुखदाता अग्नि ! तू हमको उत्तम २ पदार्थों के प्राप्त कराने वाली हो, ताकि हम तुझको प्रज्वलित करते हुए शरीर को पुष्ट करें ॥

(२) प्रातः प्रातर्गृहपतिर्नो अग्निः सायं सायं सोमनास्य दाता वसोर्वसोर्वसुदान एधीन्धानास्त्वा शतहिमा ऋधेम ॥

अथर्व० १६ । ६ । ४

अर्थ—हे घर की रक्षक अग्नि ! तू हमको प्रतिदिन प्रातः से सायंकाल तक सुख देने वाली हो, हे सुखदाता अग्नि ! तू हमको उत्तम २ पदार्थ प्राप्त कराने वाली हो, हम तुझको प्रज्वलित करते हुए ऋद्धि सिद्धि को प्राप्त हों ॥

भाव यह है कि हे अग्ने = प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आप ऐसी कृपा करें कि हम लोग अग्निहोत्र तथा उपासना करते हुए "शतहिमाः" = सौ हिम ऋतु अर्थात् सौ वर्ष पर्य्यन्त "ऋधेम" = धनादि पदार्थों से वृद्धि को प्राप्त हों ॥

या यों कहो कि हे परमात्मन् ! आप ऐसी कृपा करें कि हम सौ वर्ष पर्य्यन्त अग्निहोत्रादि कर्म करते हुए सदा लाभ ही लाभ देखें हमारी हानि कभी न हो ॥

हवन करने का समय प्रातः सूर्योदय से पीछे और सायंकाल सूर्य्यास्त से पहिले २ है, हवन स्त्री पुरुष दोनों मिलकर करें, यदि किसी कारण से कभी दोनों न करसकें तो एकही दोनों की ओर से दुगुना हवन करे ॥

हवनपात्र

निम्नलिखित हवनपात्र घर में उपस्थित रहें—

(१) चौकोन "हवनकुंड" जो किसी धातु वा मिट्टी का बारह या सोलह अंगुल लम्बा चौड़ा और उतना ही गहरा हो, परन्तु तला इसमें चौथाई हो ॥

(२)-"आज्यस्थाली"—घृत रखने का पात्र, जो चौड़े मुंह वाला बना हुआ हो जिसमें से घृताहुती सुगमता से देसकें ॥

(३)-"चरुस्थाली" = सामग्री रखने का पात्र जो धातु अथवा लकड़ी का हो ॥

(४) "आचमनी" यह शुद्ध धातु का हो जिसमें एक घूंट जल आसके ॥

(५) एक "जलपात्र" जिसमें जल और आचमनी रखी जाती है ॥

(६) "स्रुवा" धातु अथवा लकड़ी का हो जिसकी लम्बाई १६ अंगुल और हराई अंगूठे की गांठ के बराबर हो जिसमें ६ माशे घी आसके, क्योंकि कम से कम ६ माशे घी की एक आहुती देनी चाहिये ॥

(७) "प्रोक्षणी पात्र" जो तांबे आदि धातु का हो, इससे वेदी के चारों ओर जल छिड़का जाता है ॥

(८) "उदकपात्र" जो कांसी का हो, इसमें कुछ जल भरकर पास रखा जाता है ताकि घृताहुती का शेष "इदन्नमम" कहने के समय उसमें छोड़ते जावें, यह घृत हवन के समाप्त होने पर जल से पृथक् करके शरीर पर मालिश करने से अनेक रोगों का नाशक और खाने से सुखदायक होता है ॥

(९) एक "चिमटा" भी लोहे का पास रहे ॥

हवन के लिये कुछ इकट्ठा घृत शोधकर रख छोड़ें जिसमें १ सेर पीछे एक रत्ती कस्तूरी और एक माशा केसर पिसी हुई मिली हो ॥

समिधा

हवन के लिये पलाश, छोंकर, पीपल, बड़, गूलर और बेल आदि लकड़ी के छोटे बड़े टुकड़े हवनकुण्ड के परिमाण से कटवा रखें, परन्तु पहिले भले-प्रकार देख लें कि लकड़ी का कीड़ा न लगा हो और न मलिन हों, समिधाओं को यज्ञशाला के पूर्व में रखें ॥

सामग्री

हवन की सामग्री में केसर, कस्तूरी, लौंग, इलायची, जायफल, जाविश्री, बादाम आदि के सिवाय और सब पदार्थ समभाग हों, एक सेर सामग्री में कस्तूरी १ रत्ती और केसर १ माशा डाली जाय और अन्य वस्तुयें चौथाई हों, सामग्री के सब पदार्थों को अच्छी तरह देख भाल कर कूटना चाहिये ताकि दुर्गन्धित वस्तु उनमें मिली न रहें, प्रत्येक आहुती में घी वा अन्य चरु न्यून से न्यून ६ माशे और अधिक से अधिक छटांक भर हो, अधिक चरु वा घृत की आहुति देने से वह भलेप्रकार नहीं जलता किन्तु कच्चा रहकर निष्फल जाता है ॥

सामग्री के पदार्थ

(१) सुगन्धित पदार्थ—कस्तूरी, केसर, कपूर, अगर, तगर, श्वेत-चन्दन, बालछड़, कपूरकचरी, छिलूरा, लौंग, इलायची, जायफल, जावित्री धूपलकड़ आदि ॥

(२) पुष्टिकारक पदार्थ-घृत, दुग्ध, बादाम, गिरी, पिश्ता, छुहारा, दाख, चिरोंजी आदि ॥

(३) मिष्ट पदार्थ—खांड, शहद आदि ॥

(४) रोगनाशक पदार्थ-गिलोय, तज, नालोफर, मुलट्ठी, पित्तपापड़ा आदि ॥ यह सब पदार्थ बुद्धि तथा बलवर्द्धक और नीरोगता प्राप्त कराने वाले हैं ॥

हवनविधि

सायं प्रातः अग्निहोत्र करते समय पूर्वोक्त शुद्ध किये हुए घृत में से छटांक वा अधिक जितनी सामर्थ्य हो लेकर किसी शुद्ध स्थान में पूर्व की ओर मुख करके बैठें और जल, सामग्री, सब हवनीय पदार्थ तथा स्रुवा आदि सब पात्र पास रखलें ॥

फिर घृत को तपाकर थोड़ासा सामग्री में मिलावें और शेष आहुतियों के लिये अलग रहने दें, जब इस प्रकार हवन करने के लिये तैयार होजायं तब निम्नलिखित तीन मन्त्रों से प्रथम तीन आचमन करें:—

(१)-ओं अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ।

अर्थ—अमृतस्वरूप परमात्मा जो मृत्यु के भयरूप समुद्र से तरने के लिये उत्तम नौका है वह हमारा कल्याणकारी हो ॥

(२)-ओं अमृतापिधानमसि स्वाहा ।

अर्थ—अमृतस्वरूप परमात्मा जो सबका धारण करने वाला है वह हमारे लिये कल्याणकारी हो ॥

(३)-ओं सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा ।

अर्थ—सत्यस्वरूप परमात्मा जो मेरा यश तथा ऐश्वर्य्य और जो सब ऐश्वर्य्यों का ऐश्वर्य्य है वह परमात्मा कल्याणकारी हो ॥

तत्पश्चात् बायें हाथ में जल लेकर दहने हाथ से निम्नलिखित सात मन्त्रों द्वारा अंग स्पर्श करें—

(१)" ओं वाङ्मऽआस्येऽस्तु " इससे मुख

(२) "ओं नसोर्मे प्राणोऽस्तु" इससे नासिका के दोनों छिद्र
(३) "ओं अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु" इससे दोनों आँखें
(४) "ओं कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु" इससे दोनों कान
(५) "ओं बाह्वोर्मे बलमस्तु" इससे दोनों बाहु
(६) "ओं ऊर्वोर्म ओजोऽस्तु" इससे दोनों जंघा
(७) "ओं अरिष्टानि मे अङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु"
इससे सब अंगों पर जल छिड़कें

पुनः चन्दन, पलाश आदि श्रेष्ठ लगड़ी के छोटे २ टुकड़े करके हवन-कुण्ड में चिनकर फिर घृत का दीपक जलावें और "ओं भूर्भुवः स्वः" मन्त्र पढ़कर उस दीपक से एक टुकड़ा कपूर का जलाकर स्रुवा में रखें और निम्नलिखित मन्त्र पढ़कर अग्न्याधान अर्थात् कुण्ड में अग्नि स्थापन करें:—

अग्न्याधान मन्त्रः

ओं भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा ।
तस्यास्ते पृथिवी देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे ॥
यजु० ३ । ५

अर्थ—जिसप्रकार सूर्य्य, भूमि, अन्तरिक्ष तथा दिव्यलोकों में और पृथिवी अपनी पीठ पर अपने २ ऐश्वर्य्य से प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष पदार्थों का यज्ञ =हवन करते हैं उसी प्रकार मैं भी अन्न भक्षण करने वाली अग्नि के लिये भक्षण करने योग्य अन्न को देवयज्ञ स्थान में भलेप्रकार स्थापन करके सदा यज्ञ किया करूं ॥

फिर नीचे लिखा मन्त्र पढ़कर अग्नि प्रज्वलित करें:—

ओं उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्ते सꣳसृजेथामयं च ।
अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वेदेवा यजमानश्च सीदत ॥
यजु० १५ । ५४

अर्थ—हे अग्ने ! तू उत्तमता से प्रकाशित हो ताकि ये सब स्त्री पुरुष अविद्यारूप निद्रा से जागकर इष्ट और अपूर्त * कर्मों को भलेप्रकार सिद्ध करें, और हे अग्ने=ज्ञानस्वरूप परमात्मन् ! आप ऐसी कृपा करें कि सब विद्वान् तथा यजमान इस स्थान पर अब और आगे भी उन्नति करते हुए स्थिर रहें ॥

जब अग्नि समिधाओं में प्रविष्ट होने लगे तब चन्दन, पलाश आदि लकड़ी के आठ २ अंगुल लम्बे तीन टुकड़े घी में भिगोकर प्रथम एक समिधा नीचे लिखे मन्त्र से प्रज्वलित अग्नि में चढ़ावें :—

समिधाधान मन्त्राः

(१) ओं समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् ।
आस्मिन् हव्या जुहोतन स्वाहा ॥ इदमग्नये-
इदन्नमम ॥ यजु० ३ । १ (इससे एक)

अर्थ—हे विद्वानो ! समिधा से अग्नि को प्रज्वलित करके जैसे अतिथि की सेवा करते हैं वैसे ही घृत से अग्नि की सेवा करो अर्थात् इसमें उत्तम हवि की आहुति दो ताकि वह हमारे लिये कल्याणकारी हो ॥

(२) ओं सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन ।
अग्नये जातवेदसे स्वाहा ॥ इदमग्नये जातवेदसे इदन्नमम ॥
यजु० ३ । २ (इससे दूसरी)

अर्थ—हे मनुष्यो ! अच्छे प्रकार प्रज्वलित होकर शुद्ध करने वाली अग्नि जो सब पदार्थों में विद्यमान तथा सम्पूर्ण रोगों के निवारण करने वाली है उसको समिधाओं से प्रज्वलित करके उसमें उत्तम गुणयुक्त घृत और मिष्टादि पदार्थों की आहुति दें ताकि वह हमारे लिये सुखदायक हो ॥

(३) ओं तन्त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्द्धयामसि ।
बृहच्छोचाय विष्ठय स्वाहा ॥ इदमग्नयेऽङ्गिरसे इदन्नमम ॥
यजु० ३ । ३ (इससे तीसरी)

---

* विद्वानों का सत्कार, ईश्वर का आराधन, सत्पुरुषों का संग तथा विद्यादि का दान देना "इष्टकर्म" और पूर्णबल, ब्रह्मचर्य, विद्या की सफलता तथा पूर्ण युवावस्था होने के साधनों को उपलब्ध करना "अपूर्त" कर्म कहाते हैं ॥

अर्थ—सबको यथायोग्य भाग पहुंचाने वाला तथा पदार्थों के छेदन भेदन करने में अति बलवान् और जो बड़ी तेजवान् है उस अग्नि को हम लोग काष्ठ की समिधाओं और घृत से प्रदीप्त कर उसमें पवित्र हवि की आहुति दें ताकि वह हमारे लिये मंगलकारी हो ॥

ज्ञात हो कि "स्वाहा" शब्द का अर्थ कल्याणकारी है अर्थात् प्रज्वलित अग्नि में उत्तम हवि की दीहुई आहुतियां हमारे लिये कल्याणकारी हों ॥

मन्त्रों के अन्त में "इदन्नमम' पदों का अर्थ यह है कि हम लोग जो हवनादि उत्तम कर्म करते हैं वह अपने लिये नहीं किन्तु सब संसार के लाभार्थ हैं, अधिक क्या यह हवन ही सच्चा दान है जो यजमान, यज्ञकर्त्ता तथा प्रजा को कल्याण का देने वाला है ॥

पुनः इस मंत्र का एक २ वार पढ़कर पांच घृताहुति दें:—

ओं अयं त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्ध-वर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा ॥ इदमग्नये जातवेदसे इदन्नमम ॥

अर्थ—हे जातवेदाग्नि ! यह उपरोक्त इन्धन=समिधायें तेरी आत्मा=व्याप्ति का स्थान हैं, इस इन्धन से तू प्रदीप्त होकर बढ़ और हमको प्रजा, पशु, धार्मिक तेज तथा अन्नादि पदार्थों से समृद्ध कर, हम तुझमें हवन करते हैं, यह हवन " अग्नि " और ' जातवेदा "=परमेश्वर के निमित्त है मेरे लिये नहीं ॥

फिर "प्रोक्षणी" पात्र मे जल भरकर निम्नलिखित मन्त्रों से कुण्ड के चारो ओर जल सेचन करें:—

(१) " **ओं अदितेऽनुमन्यस्व**" इससे पूर्व दिशा में

(२) " **ओं अनुमतेऽनुमन्यस्व**" इससे पश्चिम में

(३) " **ओं सरस्वत्यनुमन्यस्व**" इससे उत्तर में

(४) ओं देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय । दिव्यो गंधर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ॥

यजु० ३० । १

(इससे दक्षिण वा सब दिशाओं मे जल सेचन करें)

अर्थ—हे दिव्यगुणयुक्त जगदुत्पादक परमात्मन् ! आप दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिये हमारे प्रेरक हों, हे यज्ञपति ईश्वर ! ऐश्वर्य्य की प्राप्ति के लिये हमको यज्ञ की प्रेरणा करें, हे उत्तमगुणयुक्त औषधियों के रक्षक ! हमारी आरोग्यता को पवित्र करें, हे गंधर्व = वाणी के पति परमात्मन् ! हमारी वाणी को रसदायक करें जिससे हम संसार में सब के मित्र हों ॥

इसके पश्चात् अंगूठे और मध्यमा तथा अनामिका अंगुलियों से स्रुवा पकड़कर नीचे लिखे मन्त्रों से चार घृताहुति दें:—

(१)—" ओं० अग्नये स्वाहा " इदमग्नये- इदन्नमम ॥

इस मंत्र से वेदी के उत्तरभाग अग्नि में

(२)—"ओं० सोमाय स्वाहा" इदं सोमाय—इदन्नमम॥

इस मंत्र से वेदी के दक्षिणभाग अग्नि में, और:—

(१)—"ओं० प्रजापतये स्वाहा" इदं प्रजापतये--इदन्नमम ॥

(२)—"ओं० इन्द्राय स्वाहा" इदमिन्द्राय-इदन्नमम ॥

इन दोनों मंत्रों से वेदी के मध्य में दो आहुति देकर अग्निहोत्र प्रारम्भ करें:-

प्रातःकाल के हवनमंत्र

(१) ओं सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा ॥ यजु० ३। ९

अर्थ—हे प्रकाशस्वरूप ! हे प्रकाशमान् लोकों के प्रकाशक परमात्मन् ! आप हमारे लिये कल्याणकारी हों ॥

(२) ओं सूर्योवर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ॥ यजु० ३। ९

अर्थ—हे विद्यास्वरूप ! तेजस्वरूप तथा सर्वविद्याओं के प्रकाशक परमात्मदेव ! आप हमारे लिये कल्याणकारी हों ॥

(३) ओं ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा ॥ यजु० ३। ९

अर्थ— स्वयंप्रकाश, जगत्प्रकाशक परमात्मन् ! आप मूर्तिमान सूर्य्यादिकों के भी प्रकाशक हैं, अतएव आप हमारे लिये कल्याणकारी हों ॥

(४) ओं सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या जुषाणः सूर्योवेतु स्वाहा ॥ यजु० ३। १०

अर्थ—हे प्रकाशस्वरूप, जगत्पिता परमात्मन् ! आप प्रातःकाल सूर्य्य की ज्योति का प्रकाश करके हमको विद्यादि सद्गुणों की प्राप्ति करावें और वह सूर्य्य हमारे लिये कल्याणकारी हो ॥

(५) ओं भूरग्नये प्राणाय स्वाहा ॥

अर्थ—प्राणों से प्यारा परमात्मा ज्ञानप्रकाश और प्राणरक्षा * के लिये हमारा कल्याणकारी हो ॥

(६) ओं भुववार्यवे अपानाय स्वाहा ॥

अर्थ— दुःखनिवारक परमात्मा बलवृद्धि और अपानरक्षा के लिये कल्याणकारी हो ॥

(७) ओं स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा ॥

अर्थ—सुखस्वरूप परमात्मा ज्ञानवृद्धि और व्यानरक्षा के लिये कल्याणकारी हो ॥

(८) ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापान-व्यानेभ्यः स्वाहा ॥

अर्थ—प्राणों से प्यारा, दुःखनिवारक, सुखस्वरूप परमात्मा बल और ज्ञानवृद्धि के लिये प्राण, अपान तथा व्यान की रक्षा करते हुए हमारे लिये कल्याणकारी हो ॥

---

* ज्ञात हो कि मनुष्य शरीर में पांच प्राण और पांच उपप्राण काम करते हैं, जिनका विवरण यह है कि:-

(१) "प्राण वायु"=जो हृदय में रहकर मुख से भीतर बाहर आता जाता और भोजन को भीतर लेजाता है ॥

(२) "अपान वायु"=जो गुदा में रहता और मल मूत्र को बाहर निकालता है ॥

(३) "समान वायु"=जो नाभि में रहता और जठराग्नि की सहायता से खान पान के रस को फोक से पृथक् करता है ॥

(४) "उदान वायु"=जो कण्ठ में रहता और प्राण को बाहर निकालता है, बोलना तथा गाना भी इसी से होता है ॥

(५) "व्यानवायु"=जो सर्वत्र शरीर में रहकर रसों को सब जगह पहुंचाता, पसीना लाता और रुधिर को घुमाता है, यह पांच प्राण, और:—

(१) "नाग वायु"=जो डकार लाता तथा वमन कराता है ॥

(२) "कूर्म वायु"=जिससे पलकों का झपकना और अंगों का सिकुड़ना तथा फैलना होता है ॥

(३) "क्रिकल वायु"=जो छींक लाता और क्षुधा लगाता है ॥

(४) "देवदत्त वायु"=जो जवाही लाता है ॥

(५) "धनञ्जय वायु"=जो जीवित अवस्था में स्मरण कराता और मृत्यु पश्चात् शरीर को फुलाता है, यह पांच उपप्राण हैं ॥

(९) ओं आपो ज्योतिरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवःस्वरों स्वाहा ॥

अर्थ—शान्तस्वरूप, प्रकाशस्वरूप, रस तथा अमृतस्वरूप, महान्, प्राणों से प्यारा, दुःखनिवारक तथा सुखस्वरूप परमात्मा कल्याणकारी हो ॥

(१०) ओं सर्वं वै पूर्णꣳस्वाहा ॥

अर्थ—अब यह यज्ञ पूर्ण हुआ, हे परमपिता परमात्मन्! आप हमें ऐसी शक्ति प्रदान करें कि हम लोग प्रतिदिन सायं प्रातः इसी प्रकार श्रद्धापूर्वक हवन समाप्त किया करें ॥

सायंकाल के हवनमन्त्र

(१) ओं अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ॥ यजु० ३। ९

अर्थ—अग्नि परमात्मा, ज्योतिः परमात्मा, प्रकाशमय परमात्मा और ज्ञानस्वरूप परमात्मा हमारे लिये कल्याणकारी हो ॥

(२) ओं अग्निर्वर्चोज्योतिर्वर्चः स्वाहा ॥ यजु० ३। ९

अर्थ—तेजस्वी तथा तेजोमय परमात्मा, ज्योतिर्मय परमात्मा और तेजस्वरूप परमात्मा हमारा कल्याणकारी हो ॥

(३) ओं अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ॥ यजु० ३। ९

अर्थ—इस मंत्र का अर्थ ऊपर लिख आये हैं, इसका मन से उच्चारण करके आहुति दें ॥

(४) ओं सजूर्देवेन सवित्रा सजूरात्र्येन्द्रवत्या जुषाणो अग्निर्वेतु स्वाहा ॥ यजु० ३। १०

अर्थ—जो प्रकाशस्वरूप, जगत्पिता परमात्मा रात्रि के समय चन्द्रमा की ज्योति का प्रकाश करके हमको विद्यादि सद्गुणों में प्रेरता है वह परमात्मा हमारा कल्याणकारी हो ॥

(५) से (१०) तक वही पांच मन्त्र हैं जो प्रातःकाल के हवन मन्त्रों में लिख आये हैं, उनसे सायंकाल को भी आहुति दें ॥

इति देवयज्ञः समाप्तः

अथ पितृयज्ञः प्रारभ्यते

पितृयज्ञ को "श्राद्ध" और "तर्पण" भी कहते हैं, "श्राद्ध" शब्द श्रत् धातु से बना है जो सत्य का वाचक है, जिस कृत्य से सत्य का ग्रहण किया

जाय वह "श्राद्ध" तथा श्रद्धापूर्वक सेवा करने का नाम "श्राद्ध" और जिस कर्म से माता पितादि जीवित पितरों को तृप्त=सुखयुक्त किया जाय वह "तर्पण" कहाता है॥

तर्पण तथा श्राद्ध विद्यमान और प्रत्यक्ष पितरों का ही होसकता है मृतकों का नहीं, क्योंकि मिलाप हुए बिना सेवा नहीं होसकती और मिलाप जीतों का ही होना सम्भव है मृतकों का नहीं, अतएव यहां "पितर" शब्द से जीवित माता पिता आदि पितरों का ही ग्रहण सार्थक होने से उन्हीं के लिये परमात्मा से प्रार्थना कीगई है कि:—

ओं ऊर्जंवहन्तिरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतं स्वधास्थ तर्पयत मे पितॄन्॥ यजु० २। ३४

अर्थ—हे परमात्मन्! बल पराक्रम देने वाले उत्तम रसयुक्त घृत, दुग्ध पक्वान्न और रस चूते हुए पके फल मेरे पितॄन्=पिता आदि पितरों को प्राप्त कराके तर्पयत=तृप्त करें जिससे वह सदा प्रसन्न होकर मुझको सत्योपदेश करते रहें॥

"पितर" शब्द से पिता, माता, पितामह, मातामह आदि तथा आचार्य्य, विद्वान् और अवस्था तथा ज्ञानवृद्ध माननीय पुरुषों का ग्रहण है॥

एक "**महापितृयज्ञ**" भी होता है जिसमें नीचे लिखे आठ प्रकार के पितरों की सेवा का विधान किया है, जैसाकि:—

(१) "सोमसद"=ब्रह्मविद्या के जानने वाले।

(२) "अग्निष्वात"=कलाकौशल विद्या के ज्ञाता।

(३) "बर्हिषद्"=कृषि विद्या के वेत्ता।

(४) "सोमपा"=वनस्पतियों और औषधियों के गुण को जानने वाले।

(५) "हविर्भुज"=हवन विधि के पूर्ण वेत्ता।

(६) "आज्यपा"=दूध देने और भार उठाने वाले पशुओं का पालन, पोषण और रोगनिवृत्ति की विद्या जानने वाले।

(७) "सुकालिन"=ब्रह्मविद्या का उपदेश करने वाले।

(८) "यमराज"=न्याय व्यवस्था बांधने, पक्षपात छोड़कर न्याय करने वाले और आप शुद्धाचरण रखने वाले राजकीय पुरुष, इनकी सेवा तथा आज्ञापालन करना भी "पितृयज्ञ" कहाता है॥

इति पितृयज्ञः समाप्तः

अथ भूतयज्ञः प्रारभ्यते

"भूतयज्ञ" का ही दूसरा नाम "बलिवैश्वदेव यज्ञ" है, इसमें (१) कुत्ते (२) पतित (३) भङ्गी आदि चाण्डाल (४) कुष्ठी आदि पापरोगी (५) कौवे (६) चिउंटी आदि कृमी कीडादिकों के लिये दाळ, भात, रोटी आदि की छः बलि दी जाती हैं, जिसमें प्रमाण यह है कि:—

अहरहर्बलिमित्ते हरन्तोऽश्वायेव तिष्ठतेघासमग्ने ।
रायस्पोषेणसमिषा मदन्तोमाते अग्ने प्रतिवेशारिषाम् ॥

अथर्व० १९ । ७ । ७

अर्थ—हे अग्नि परमेश्वर ! जिस प्रकार शुभ इच्छा से हम लोग घोड़े के आगे खाने योग्य पदार्थ धरते हैं उसी प्रकार शुभ इच्छा से आप की आज्ञानुसार नित्य प्रति बलिवैश्वदेव कर्म को प्राप्त होवें और आप ऐसी कृपा करें कि सब प्रकार का ऐश्वर्य्य, लक्ष्मी, घी, दूध आदि पुष्टिकारक पदार्थों से हम लोग सदा आनन्दित रहें, हे परमगुरो अग्ने परमेश्वर ! हम लोग आपकी आज्ञा के विरुद्ध कभी न चलें और न अन्याय से किसी प्राणी को पीड़ित करें किन्तु सबको अपना मित्र समझकर उनके साथ हित करते हुए उनके पालन पोषण में सदा तत्पर रहें ॥

(१) ओं श्वभ्यो नमः (२) ओं पतितेभ्यो नमः
(३) ओं श्वपाभ्यो नमः (४) ओं पापरोगिभ्यो नमः
(५) ओं वायसेभ्यो नमः (६) ओं कृमिभ्यो नमः ॥

घर में बने हुए अन्न में से ऊपर लिखे मंत्रों द्वारा छः भाग निकालकर पूर्वोक्त चाण्डालादि को देदें, और घृत तथा मिष्टान्नमिश्रित भात, यदि भात न बना हो तो खारी और लवणान्न के सिवाय जो कुछ बना हो उसकी दश आहुतियां जो एक २ ग्रास के समान हों आगे लिखे दश मन्त्रों से अग्नि पर चढ़ावें जो चूल्हे से निकालकर अलग रखी हो:—

(१) ओं अग्नये स्वाहा ॥
(२) ओं सोमाय स्वाहा ॥

(३) ओं अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा ॥

(४) ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा ॥

(५) ओं धन्वन्तर्यै स्वाहा ॥

(६) ओं कुह्वै स्वाहा ॥

(७) ओं अनुमत्यै स्वाहा ॥

(८) ओं प्रजापतये स्वाहा ॥

(९) ओं सह द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा ॥

(१०) ओं स्विष्टकृते स्वाहा ॥

तत्पश्चात् निम्नलिखित सोलह मंत्रों से दिशायें आदि के लिये सोलह बलि पत्तल पर अथवा थाली में धरें, यदि बलि धरते समय कोई अतिथि आजाय तो उसी को बलि का अन्न खिलादें नहीं तो इसकी भी अग्नि में आहुतियां देवें ॥

(१) ओं सानुगायेन्द्राय नमः ।

अर्थ—इन्द्र = ईश्वर के अनुयायी ऐश्वर्य्ययुक्त पुरुषों को नमस्कार हो (पूर्व दिशा के लिये)

(२) ओं सानुगाय यमाय नमः ।

अर्थ—यम = ईश्वर अनुयायी सांसारिक न्यायाधीशों को नमस्कार हो । (दक्षिण दिशा के लिये)

(३) ओं सानुगाय वरुणाय नमः ।

अर्थ—ईश्वर भक्तों को नमस्कार हो (पश्चिम दिशा के लिये)

(४) ओं सानुगाय सोमाय नमः ।

अर्थ—पुण्यात्माओं को नमस्कार हो (उत्तर दिशा के लिये)

(५) ओं मरुद्भ्यो नमः ।

अर्थ—प्राणपति ईश्वर को नमस्कार हो (द्वार के लिये)

(६) ओं अद्भ्यो नमः ।

अर्थ—सर्वव्यापक ईश्वर को नमस्कार हो (जल के लिये)

(७) ओं वनस्पतिभ्यो नमः ।

अर्थ—वनस्पतियों के स्वामी ईश्वर को नमस्कार हो (मूसल और ऊखल के लिये) ।

(८) ओं श्रियै नमः ।

अर्थ—सर्व पूजनीय और ऐश्वर्य्ययुक्त ईश्वर को नमस्कार हो (ईशान= उत्तर पूर्व के बीच की दिशा के लिये) ।

(९) ओं भद्रकाल्यै नमः ।

अर्थ—कल्याणकारक ईश्वरीय शक्ति को नमस्कार हो (नैऋत=दक्षिण और पश्चिम के बीच की दिशा के लिये) ।

(१०) ओं ब्रह्मपतये नमः ।

अर्थ—वेद के स्वामी ईश्वर को नमस्कार हो ।

(११) ओं वास्तुपतये नमः ।

अर्थ—वास्तुपति ईश्वर को नमस्कार हो (इन दो मंत्रों से मध्य के लिये) ।

(१२) ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यः नमः ।

अर्थ—विश्वपति और स्वयंप्रकाश ईश्वर को नमस्कार हो ।

(१३) ओं दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नमः ।

अर्थ—दिन में विचरने वाले प्राणियों का सत्कार हो ।

(१४) ओं नक्तंचारिभ्यो भूतेभ्यो नमः ।

अर्थ—रात्रि को विचरने वाले प्राणियों का सत्कार हो (इन तीन मंत्रों से ऊपर के लिये) ।

(१५) ओं सर्वात्मभूतये नमः ।

अर्थ—सर्वव्यापक ईश्वरीय सत्ता को नमस्कार हो (इससे पीछे की ओर) ।

(१६) ओं पितृभ्यः स्वधायिभ्यः नमः ।

अर्थ—ज्ञानियों और स्वधा=हविदान के अधिकारियों को नमस्कार हो (इससे दक्षिण की ओर) ।

इति भूतयज्ञः समाप्तः

अथ नृयज्ञः प्रारभ्यते

नृयज्ञ को ही "अतिथियज्ञ" कहते हैं, जो विद्वान्, परोपकारी, जितेन्द्रिय, सत्यवादी, छल कपट रहित, धार्मिक पुरुष देशाटन करता हुआ अकस्मात् घर आजाय उसको "अतिथि" कहते हैं, ऐसे अतिथि का सत्कार करके उससे सत्योपदेश ग्रहण करना "अतिथियज्ञ" कहाता है, इसमें अनेक वैदिक प्रमाण हैं, परन्तु यहां संक्षेप से अथर्ववेद के दो मन्त्र लिखते हैं:—

(१) ओं तद्यस्यैवं विद्वान् व्रात्योऽतिथिर्गृहानागच्छेत ॥

अथर्व० १५ । ११ । २ । १

(२) ओं स्वयमेनमभ्युदेत्य ब्रूयाद् व्रात्यक्वावात्सीर्व्रात्योदकं व्रात्य तर्पयन्तु । व्रात्य यथा ते प्रियं तथास्तु, व्रात्य यथा ते वशस्थास्तु । व्रात्य यथा ते निकामस्तथास्त्विति ॥

अथर्व० १५ । ११ । २ । ३

अर्थ—इन मंत्रों का भाव यह है कि जब पूर्वोक्त उत्तम गुणयुक्त विद्वान् अकस्मात् अपने घर आजाय तब गृहस्थ स्वयं उठकर आदरपूर्वक उसको मिले और उत्तम आसन पर बिठाकर पूछे कि हे व्रात्य = उत्तम पुरुष ! आपका निवासस्थान कहां है, हे व्रात्य ! जल लीजिये, हाथ मुंह धोइये, हे व्रात्य ! हम लोग प्रेमभाव से आपको तृप्त करेंगे, हे व्रात्य ! जो पदार्थ आपको प्रिय हों वही हम उपस्थित करेंगे, हे व्रात्य ! जैसी आपकी इच्छा हो वही हम पूर्ण करेंगे हे व्रात्य ! जैसी आपकी कामना हो वैसा ही होगा ॥

ऐसे सतोगुणी और सत्कर्मी अतिथि आजकल दुर्लभ हैं, इनके अभाव में जो विद्वान् आर्य्य पुरुष घर में आजायं उनका श्रद्धापूर्वक यथायोग्य आदर सम्मान करके उनसे सत्योपदेश ग्रहण करना "नृयज्ञ" जानना चाहिये ॥

इति नृयज्ञः समाप्तः

यह वैदिक पांच यज्ञ हैं जिनका विधिपूर्वक अनुष्ठान करने वाला पुरुष पवित्र होकर उस उच्चपद को प्राप्त होता है जिसको "त्र्यम्बकं यजामहे" मंत्र में वर्णन किया है, इन्हीं का अनुष्ठान करनेवाला सांसारिक ऐश्वर्य पाता और अन्ततः निःश्रेयस को प्राप्त करता है, इसलिये प्रत्येक वैदिकधर्मी का कर्त्तव्य है कि वह निरालस होकर उक्त यज्ञों का पालन करे ॥

समाप्तश्चायं ग्रन्थः